

कल्याणी

भारतीय नारी के परम्परागत आदर्शों में परम विश्वास रखने वाली कल्याणी के प्रेम, त्याग और विद्रोह की सशक्त कहानी। हिन्दी के अनन्य गद्यकार श्री जैनेन्द्र का भाव प्रधान रोचक उपन्यास।





जैनेन्द्रकुमार

भी धक से रह गया। विचार आया कि अब ? सोच लिया कि अब यहाँ सब उजाड़ हो जाएगा और क्या ? उस घर का नामनिशान मिट चुकेंगे और ईंट-पत्थर की यह हवेली ही यहाँ भूत-सी खड़ी रह जाएगी। प मेरी भूल। 'सृष्टि में कभी कोई अभाव नित्य रहा है ? कौन मनुष्य यहां जहान में मर नहीं जाता ? सो उनकी मृत्यु के दो-एक दिन बाद तक तो जरूर यह मकान शोकमग्न दीखा, जैसे प्राण न रहे हों, सब रहा गये हो। पर मैं दो चार रोज बीतते-न-बीतते यहाँ तो चहल-पहल दिखाई देने लगी। जगमग पहले से अधिक हो चली, दीवारों पर नया रंग रोगन दीखा, बढ़िया फ़र्नीचर सजा, जैसे किसी नये सौभाग्य के स्वागत की तैयारी हो।

मैंने चाहा कि उधर ध्यान न दूँ सोच लूँ कि संसार है, शोक करते बैठना यहाँ शोभा नहीं देता। ऐसे संसार चलना दूभर होता है। यहाँ आँख मूँद लिए जाओ, और क्या ! हलके रहो और कुर्सी से हटकर गिरो तो भी कुर्सी पर ही गिरो। रंज को पीठ दिये रहो। बुद्धिमानी इसी का नाम है।

पर एक दिन श्रीधर ने आकर कहा कि मुन्ना आपने इसी महीने जनवरी शादी होने वाली है।

बात जिनकी चल रही थी उनके बारे में मुझे यह सूचना प्रीतिकर नहीं मालूम हुई। मैंने कहा—क्या-क्या ?

बोले—आपको सब बिलकुल खबर नहीं है। हम तो समझते थे

मैंने कहा—साफ कहो। क्या डॉक्टर और शादी कर रहे हैं ?

श्रीधर ने कहा—हाँ। पर हम समझते थे कि यह बिना आपकी सलाह कुछ न करते होंगे।

मैं चुप रह गया। करता तो क्या ? क्या श्रीधर को यह कहता कि दिन सदा बदलते रहते हैं और किसी की भी हिम्मत नहीं चली। दो-एक सप्ताह पहले अलबत्ता गुमसुम बात थी। पर बीता अतीत हुआ और अब बात और है। डॉक्टर साहब अब अकेले हैं और अपने मालिक हैं। अब

घर में स्वामिनी थीं—किन्तु यह इतिहास हुआ है।

तो बार सूचना यह है कि उस घर में अब नयी स्वामिनी आएँगी। मैंने हठात् मन को कहा कि चलो अच्छा समाचार तो है। बच्चों को माँ मिलेगी। घर बसा-का-बसा रह जाएगा।

लेकिन सच कहूँ कि फिर भी जब उधर को निकलता हूँ और मकान का नया रंग रोगन देखता हूँ, जब देखता हूँ कि नया फ़र्नीचर वहाँ करीने से सजाया जा रहा है, बिजली की तेज और बड़ी बत्तियाँ लग रही हैं आदि, तो यह सब देखकर उनकी याद आ ही जाती है जो अभी कल थीं और आज नहीं हैं। और जो—खैर, जाने दो उसको। उस बात पर जी बरबस उदास हो जाता है।

२

हाल ही की तो बात है। ऐसा लगता है कि जैसे कल की हो—न सही कल की, पर दो-ढाई बरस से अधिक नहीं हुए।

रात के नौ से ऊपर समय हो गया होगा। शुरू जाड़े के दिन थे। भीतर बैठे थे और 'प्रभात' भी उस दिन थे। देखता क्या हूँ कि पति-पत्नी दोनों आ धमके हैं। धमकना कहना ठीक नहीं है, पर उनका आना वक्त के लिहाज से कुछ ऐसा अनमेल और अनहोना लगा कि

मैंने दोनों का अभिवादन किया। कहा—भाग्य कब समय देखता है! तो भी इस समय कोई असामान्य काम ही आपको लाया होगा। मैं खाली हूँ। कहिए!

पत्नी के चेहरे पर बहुत उल्लास दिखाई देता था, जैसे भीतर भरी हों और कुछ उमगा आता हो। बोलीं—गनीमत है कि यह वक्त तो हमें मिल सका। और बड़ी बात यह है कि आप मिल गए, नहीं तो

वाक्य को उन्होंने पूरा नहीं किया और उनमें संकोच हो आया।

स्थिति को सहज रखने के लिए मैंने परिचय कराया—आप श्री शेखर मेरे मित्र यहाँ कॉलिज में लेक्चरर हैं जी, गवर्नमेंट कॉलिज में। आप हिन्दी के साहित्यकार श्री 'प्रभात', प्रयाग रहते हैं। और आप श्रीमती और डॉक्टर असरानी। आप (श्रीमती) को हिन्दी से प्रेम है।

परिचय के अनन्तर भी एकाएक असमंजस छूटा नहीं, तब मैंने श्रीमती कल्याणी के प्रति देखकर कहा—'प्रभातजी' की रचना तो आपने शायद कोई पढ़ी भी होगी।

बोली—'परमवा' आपने ही मुझको दी थी। मैं कृतज्ञ हूँ। पर इसने आकर शायद आपका हर्ज किया है।

मैंने अपना हर्ज होने से इन्कार किया। कह ही रहा था कि डॉक्टर बोले—इन्होंने हिन्दी में कुछ कविताएँ लिखी हैं। दिखाओ दिखाओ, दिखाती क्यों नहीं हो ?

कल्याणी इस पर कुछ नम्र और लज्जित भाव से मेरी ओर देखकर बोलीं—जी नहीं कुछ नहीं। वह यों ही

पति बोले—नहीं नहीं झिझको मत।

यह कहकर अपनी पत्नी की ओर से रखी हुई कापी को उठाकर उन्होंने मेरे आगे कर दिया। पत्नी से लाज के मारे कुछ कहते न बना।

मैंने कापी लेकर कहा—अच्छा तो है! एक हम हैं कि हिन्दी राष्ट्र-भाषा हुई तो और प्रान्तीय भाषाओं को सीखते ही नहीं। उसका काम तो आप इतर प्रान्त वालों को मिला है। देखिए न, सिन्धी होकर आप देखते-देखते हिन्दी वाली बनीं।

कल्याणी कुछ बोली नहीं।

पति ने कहा—ये कविताएँ इन्होंने कुल पाँच रोज में लिखी हैं। ध्यान में आकर हैं। अपनी भाषा की यह मानो पूर्व कवि हैं, आप जानते ही हैं। हिन्दी में भी आप देखेंगे कि यह आगे ही बढ़ती हैं।

मैंने कहा—सो तो आशा ही है।

पर पत्नी ने कुछ रोष के भाव से पति की ओर देखा और जब उन्होंने

देखा कि उस स्पष्ट दृष्टि को हमने भी देखा है तो वह लाज में कुछ सकुच गई और उनके चेहरे पर लाली दौड़ गई।

पर डॉक्टर (फिन-प्रम) नहीं हुए। बोले—आप तो जानते ही हैं कि इनकी पुस्तकें कॉलेज तक के कोर्स में हैं। इनका मैंने भी अनुवाद हुआ है। हिन्दी में निकलेगी तो उसमें भी आप देखेंगे कि नया युग आया है। उनके काव्य में एक सन्देश होता है और...

कल्याणी पति की ओर देखती हुई सहसा कुछ ज़ोर से कह उठीं—आपसे किसी ने कुछ पूछा है कि आप बोलते ही जाएँगे?

पर डॉक्टर बोलते ही गए। कुछ हँसकर उन्होंने कहा—अनुचित न मानिए आप। अपनी भाषा की वह सबसे श्रेष्ठ कवि हैं। और हिन्दी में आएँगी तो वह कर एक चमत्कार लाएँगी। मैं ठीक कहता हूँ। इनको अपनी तारीफ़ सुनने में अच्छा हो सकती है लेकिन मुझे सच बात कहने में पीछे रहने की आदत नहीं है। हाँ—

इतना कहकर मेरे सामने से उन्होंने निस्संकोच कापी को उठा लिया और अपनी पत्नी को देते हुए कहा—लो सुनाओ तो वह 'भारत माता' वाली कविता वही सुनाओ।

कल्याणी ने उस समय मानो एक भर्त्सना की निगाह से पति को देखकर कहा—जो बात आपको आती नहीं है उसके बीच में भी बोलना क्यों आपको ज़रूरी हो जाया करता है?

पत्नी मिस्री भाषा में ही बोली थीं। बोलते समय उनकी भाव भंगिमा कुछ ऐसी स्पष्ट हो गई थी कि सिन्धी बिना जाने भी उसका भाव हमने समझ लिया।

पति इस पर विशेष अधीर नहीं दिखाई दिए। वह हिन्दी में ही कहने लगे—कोई बात नहीं कोई बात नहीं।

दम्पति की इस स्थिति पर और लोगों को कुछ असमंजस हो आया। श्रीधर उठे और जाना चाहने लगे। खड़े होकर उन्होंने अनुमति माँगते हुए कहा—मुझे क्षमा कीजिएगा। ख़ुशी होती अगर मैं ठहर सकता लेकिन मुझे काम है।

'प्रकाश' भी अपनी कुरसी पर अस्थिर-से दीखे मानो और क्या कह भी सकें।

पर उस विचित्र-सी स्थिति को एकदम अपने हाथों में लेकर कल्याणी ने श्रीधर की ओर देखते हुए कहा—क्या आप जाइएगा? लेकिन कुछ भी देर और ठहर सकें तो कृपाकर ठहरिए, मैं आभारी होऊँगी। मैं कविता सुनाना चाहती थी। पसन्द तो क्या आएगी क्योंकि मैं हिन्दी जानती भी नहीं हूँ। पर सीखना चाहती हूँ और आप लोगों से सहानुभूति की आशा रखती हूँ। अनुमति है?

इस पर श्रीधर यथास्थान अपनी जगह पर बैठ गए और 'प्रकाश' भी सुस्थिर हो आए। कल्याणी ने उस समय बिना देर लगाए कापी खोलकर कविता सुनानी शुरू की। वह 'भारत माता' के सम्बन्ध में नहीं थी एक बटोही के सम्बन्ध में थी।

बटोही वह जाने कब से चला आ रहा है। राह उसकी दीर्घ है। संकेत कोई उसे प्राप्त नहीं है। बस एक पुकार उसने भीतर सुनी है। उसकी टोह में वह चलता चला आ रहा है चलता चला आ रहा है और चलता चला जाएगा। क्या चिह्न पीछे छोड़ता आ रहा है पता नहीं। उसका गन्तव्य कहीं भी है या नहीं पता नहीं। क्या अर्थ है या परमार्थ है या सब स्वार्थ है कुछ उसको पता नहीं। बटोही ज्ञानी नहीं है ध्यानी नहीं है वह किसी मार्ग को नहीं जानता। बाहर उसे कोई संकेत प्राप्त नहीं है एक पुकार उसने भीतर सुनी है। वही है वही है। अतिरिक्त वह कुछ नहीं जानता। उसी में बँधा वह बटोही अविराम चला चल रहा है चलता चला आ रहा है चलता चला जाएगा। कहाँ से आयी है वह टेर? कौन देता है उस पुकार? कहाँ है उसके प्राणों का सूत्रधार? कहाँ है कहाँ? बटोही यहाँ किधर बिछुड़ आया है? क्या वह विछोह सम्भव है? क्या उसका कहीं अन्त है? कहाँ कहीं अन्त है? ओह बिछुड़ा बटोही नहीं जानता। वह चल रहा है चल रहा है। प्राण नहीं निरन्तर कभी विछोह की व्यथा बस भीतर है। वही धुन और वही टेक। वही उसकी लगन। बटोही उसके सहारे चलता चला आ रहा है और चलता

चला जा रहा है। यद्यपि कोई उसे प्राप्त नहीं है, पर टेर उसे बुला रही है, और विछोह उसे खींच रहा है। बटोही राह-बेराह चल रहा है चल रहा है। क्योंकि वियोग में चैन कहाँ है! यहाँ सराय में कुछ उसका नहीं है वह बटोही है राह चलते की उसकी सबको राम-राम है। चलना उसका काम है। रह जाएगा सब रह जाएगा। वह तो चलता ही चला जा रहा है, चलता ही चला जाएगा। वह बटोही!

कविता कुछ ऐसे तल्लीन भाव से सुनायी गई कि जब वह पूरी हुई तब उसके बाद भी कुछ क्षण तक मानो वह प्रवाहित ही रही मानो हवा में अभी गूंज ही रही हो। समय बँध गया था और कविता की ही वहाँ एक गति थी। कुछ पल ऐसी ही अवस्था रही।

प्रभाव की दशा न पूछिए!

उस अवस्था से उबरने पर मैंने देखा तो कल्याणी का चेहरा मानो सुस्त और दया-प्रार्थी हो आया था जैसे जाने वह क्या अपना खो बैठी हो!

मैंने कहा—इस कविता के लिए तो आपको बधाई दी जा सकती है और आपके मधुर कण्ठ को भी।

उन्होंने सकुचाते हुए पूछा कि भाषा की भूलें तो बेहद होंगी?

मैं कुछ कहने जा रहा था कि पति बीच में बोले—हिन्दी में ऊँची कविता है कहाँ? तुम्हारी इस कविता के जैसा सुन्दर भाव हिन्दी में नहीं मिल सकता। मैं कहता हूँ कि हिन्दी में तुम्हारा अनुपम स्थान होगा शीर्ष स्थान!

यह सुनकर जैसा एक भाव कल्याणी के चेहरे पर मुझे दिखाई दिया उससे मुझे कष्ट हो आया। मैंने कहा—डॉक्टर साहब जो कहते हैं वह एकदम मिथ्या हो सो नहीं। आप जरूर लिखती रहिए। लिखना छोड़िए नहीं।

कल्याणी ने मन्द भाव से कहना चाहा—भाषा

मैंने कहा—हाँ भाषा अभी एकदम ठीक तो नहीं है। इसका कारण [म उच्चारण भी है। पर भाव उत्तम है। भाव चाहिए, भाषा तो सँवरती

रहेगी।

पति ने प्रसन्न भाव से कहा—देखो मैं कहता न था। और यह तो शुद्ध हिन्दी के हैं। कोई दूसरी भाषा का होकर हिन्दी-साहित्य में ऊँची जगह बनाए, यह क्यों इन्हें महसूस होगा! लेकिन तुम परवाह न करो। अच्छा बताइएगा आपकी भाषा में क्या दोष है?

मैं उनके प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका। झेंप में हठात् कुछ मुस्करा-कर रह गया।

पति ने पत्नी से कहा—मैं कहता हूँ फिक्र छोड़कर लिखती जाओ। परवाह न करो। भाव में खूबी है तो तुम्हारी यही भाषा चल जाएगी। आज की हिन्दी में है क्या?

कल्याणी ने मानो कष्टपूर्वक मुझसे कहा—आप इनकी बात पर न जाइएगा। यह तो मुझको ऐसी कहते हैं। (कहती हुई कुछ विद्रूप में हँसी और सुनकर पति प्रसन्न हुए।) और इनको अपनी कहने का मरज है जानें चाहे न जानें। तो आपकी राय है कि मैं लिखती रहूँ?

मैंने कहा—अवश्य राय है और लिखती तो जरूर रहिए। लेकिन एक काम कीजिए तो कैसा! पहले गद्य लिखिए।

वह हँसकर बोलीं कि गद्य में मात्राओं की बात शायद आप कहते हों। हिन्दी में इसका ध्यान बहुत रखा जाता सुनती हूँ। मैंने इसीसे अपनी कविता में जगह-जगह मात्राएँ सँभाली हैं। देखिए'

कहकर वह अपनी कविता से यहाँ-वहाँ के चरण से उनकी मात्राएँ गिनने और दिखाने लगीं।

मैंने कहा—हाँ मैं क्या जानता हूँ! मैं कौन छन्द जानता हूँ! पर भाषाओं में उच्चारण की भी अपनी-अपनी विशेषता रहती है। हिन्दी के उच्चारण में लचक कम है। इससे हिन्दी-काव्य में उतनी तरलता नहीं। हिन्दी का एक्सेंट पुरुष है। कान के भारी होने की बात है। इससे अभी गद्य लिखें तो अच्छा। और अभ्यास से हिन्दी का एक्सेंट आप पकड़ लेंगी और तब पद्य शुरू कर दीजिएगा।

मैंने अनुभव किया कि वह मेरी इस बात को कुछ भी ग्रहण न कर

साथी पर उन्होंने रस के साथ उन विषयों पर चर्चा की, कृतज्ञता प्रकट की और कुछ देर बाद महारानी दम्पति चले गए।

खाने के बाद 'प्रवासी' कल्याणी महारानी के प्रति अपनी सराहना प्रकट करते रहे। उनकी सम्मति थी कि इस महिला की प्रकृति में काव्य है। उन्होंने तो इस विषय में बड़े-बड़े विशेषण भी प्रयोग किये। श्रीधर कविता के विषय में तो नहीं कह सकते, पर और तरह वह प्रसन्न थे। उनकी राय हुई कि इन महिला में परिष्कृत रुचि है। पति के सम्बन्ध में दोनों की धारणा उतनी उत्साहपूर्वक नहीं थी।

श्रीधर ने मुझसे पूछा—इन लोगों को आप जानते हैं?

मैंने कहा—हाँ जानता हूँ।

पर श्रीधर अपने ढंग के पूरे जीव हैं। पूछा—कब से जानते हैं?

मैंने कहा—दिनों के लिहाज से भी कम दिनों से नहीं जानता।

श्रीधर की और भी जिज्ञासाएँ थीं।

मैंने कहा—सब जिज्ञासाओं को शान्त कर सकूँ इतने ज्ञान का मैं पात्र नहीं हूँ।

श्रीधर बोले—पति अनुकूल भाव से सम्पन्न दिखाई देते हैं, इसीसे पत्नी को कविता से प्रेम है।

मैंने कहा—ऐसा नहीं, पत्नी स्वयं डॉक्टर हैं। बल्कि दोनों के सम्मिलित व्यवसाय में मुख्य डॉक्टरी पत्नी की ही है। वह विशेषज्ञ पास हैं। पति यहीं के पास हुआ डॉक्टर न हों तो भी मुझे अचरज न होगा पर व्यवसाय की देख-रेख उन पर ही है।

श्रीधर को इस पर कुछ अजब-सा मालूम हुआ। साश्चर्य कहा—वह खुद डॉक्टर हैं? तो भी 'कवि' क्यों हैं?

मैंने पूछा—क्या आशय?

बोले—जो डॉक्टर है वह कवि नहीं हो सकता।

मैंने कहा—इसमें मैं क्या कह सकता हूँ? अपना मानना है।

बोले—यह भ्रान्ति है।

मैंने कहा—धन्धे से डॉक्टर समझिए और प्रकृति से कवि।

श्रीधर बोले—यह तो दुख की बात है।

मैंने कहा—हाँ, शायद सुख की तो बात नहीं है।

'प्रभास' को इधर-उधर से सरोकार न था। उनकी मति हो चुकी थी कि वह महिला कवि हैं, बाद में जो भी हों।

दूसरे दिन काफी सवेरे डॉक्टर मसरानी घर आये। मुझे कुछ विस्मय हुआ। मैंने साभिवादन कहा—आइए, आइए।

पर वह रुष्ट थे। बोले—क्या आपको यह चाहिए था?

जब उन्हें प्रकट हुआ कि उनके रोष के शब्दों से उनका मतलब मेरी समझ में नहीं आ रहा है तो उन्होंने कहा—क्या कल आपको इस तरह व्यवहार करना चाहिए था?

मैंने कहा—अनजाने कोई भूल हुई हो तो मुझे क्षमा कीजिए, लेकिन बात क्या है?

बोले—उनको (श्रीमती मसरानी को) जानते हुए आपने उनके साथ क्या व्यवहार किया? आप उनकी योग्यता जानते हैं। वह आपसे प्रोत्साहन की आशा रखती थीं। आपने उत्साह भंग किया। आखिर यही न कि आप नहीं चाहते कि कोई दूसरी भाषा से आकर हिन्दी में ऊँची जगह बनाए!

मैंने कहा—राम-राम, यह आप कहते क्या हैं?

उन्होंने बताया—यहाँ से लौटने पर उन्होंने अपनी कविता की कापी को फाड़ दिया। सुना आपने, फाड़कर फेंक दिया! और इसके जिम्मेदार आप हैं।

उस बात को सुनकर मैं स्तब्ध रह जाने के अलावा और कुछ नहीं कर सका। आगे वह बोले—अब से वह कोई कविता हिन्दी में न लिखेंगी।

मैंने कहा—मुझे बहुत दुख है, लेकिन निश्चय ही आप यह नहीं मानते कि मेरा आशय कभी ऐसा रहा होगा ?

डॉक्टर नाराज थे। उन्होंने कहा—और नहीं तो क्या रहा होगा ? वह ऐसी ही नाराजी की बातें कुछ देर कहते रहे। बताया कि कल्याणी भी आपसे प्रसन्न नहीं हैं। कल्याणी के सम्बन्ध में काफी प्रशंसात्मक बातें उन्होंने कहीं—वह श्रेष्ठ कवयित्री ही नहीं, योग्य गृहिणी हैं और आदर्श पत्नी भी हैं। डॉक्टरी में तो उनकी निपुणता पर सन्देह ही नहीं है, वह तो प्रकट है, इत्यादि।

मैंने हार्दिक धन्यवाद के साथ सब स्वीकार किया। कहा—आज मेरा उधर आना न हो सकेगा, इसके लिए खिन्न हूँ। पर कल ही माफी माँगने आऊँगा। आप उन्हें मेरी ओर से कहिएगा कि अगर मेरे किसी व्यवहार से उन्हें कष्ट हुआ है तो उसका कष्ट मुझे ही अधिक है।

अगले रोज जब मैं मिला तो कल्याणी ने कहा—सचमुच आपकी बातों से मेरा उत्साह जाता रहा था, इससे निराशा में मैंने कापी फाड़ दी।

मैंने कहा—यह तो सदा के लिए मुझे दोषी बना दिया गया !

उन्होंने पूछा—तो क्या सचमुच मैं लिख सकूँगी ? लिख सकती हूँ ?

मैंने कहा—हाँ अवश्य !

यह सुनकर कुछ देर चुप रहीं। बोलीं—अच्छा लिखकर फिर क्या होगा ?

डॉक्टर उस समय वहाँ नहीं थे। सन्ध्या का समय था। उन्हें कुछ फुरसत मालूम होती थी।

मैंने कहा—लिखकर होता क्या है ? पहले जो लिखा उसका क्या हुआ ?

बोलीं—यही तो मैं जानना चाहती हूँ कि उस सबसे क्या हुआ है ?

कविता से क्या होता है ? वह मन का उच्छ्वास है। उच्छ्वास से क्या होता है ?

मैंने कहा—फिर भी उच्छ्वास के घुटने से उसका बाहर रूप लेकर निकल जाना क्या अच्छा नहीं है ?

बोली—क्यों अच्छा है ?

मैं अचरज से उनकी ओर देखता रह गया।

बोली—सब व्यय है, सब व्यय !

– मैंने कहा—सुनिए, व्यय कहने से तो जीवन का अर्थ भी व्यर्थ हो जाएगा। ऐसे कैसे चलेगा ?

बोली— न चले तो क्या हानि है ?

स्पष्ट वह बहस चाहती थी सुनना चाहती थीं कहना चाहती थीं। चुप करने की गरमी चाहती थी।

मैंने कहा—हानि ? हानि का सवाल कहाँ आता है ? जीना मिल गया, तो जीना होगा कि नहीं ? हानि-लाभ का लेखा क्या हमारे पास रहता है ? नहीं, उसका बही-खाता तो कहीं और रहता है हानि-लाभ वह कहाँ है। हम व्यर्थ हैं, यह तो कोई तभी कह सकता है जब उसे उस हिसाब का पता हो। उसका पता नहीं है। तब अपनी बात को अपनी दूर हम ले किस बल पर जाएँ ! और हिसाब में शून्य भी शून्य नहीं है।

वह कुछ उद्विग्न हो आईं। उन्होंने कहा—नहीं नहीं नहीं ! जीवन की बात फिजूल है। अनगिनती तारे हैं अनगिनती दुनिया है। यहाँ जीवन क्या होती है ? सब फिजूल है। जोस्टी फिजूल है और कविता फिजूल है। क्या उसमें अर्थ है ? मार कुछ समझ में नहीं आता।

[illegible] कहा—[illegible]। आप तो बहुत उपयोगी काम कर रही हैं।

[illegible] और मरने को जीवन देने का पुण्य काम कर रही हैं।

[illegible] है कि मैं रोगियों का इलाज करती हैं। मालूम [illegible]

[illegible] मालूम है पर रोगियों को [illegible]

आवश्यक तो आप करती ही हैं।

उन्होंने जोर से कहा—नहीं करती।

"रोगियों का दवा नहीं देतीं ?

नहीं, नहीं देती। पैसा लेती हूँ, सो एवज में सौंप देती हूँ। उँह, दवा ! हाँ वे आराम पाते हैं। लेकिन पैसा खर्च करके जो मिलता है वह आराम ही समझा जाता है।

मैंने कहा—यह तो अपने साथ व्यर्थ कठोर होती हैं।

बोलीं— मैं बीमार पड़ती हूँ तो खुद अपनी दवा लेती हूँ। और जो विश्वासपूर्वक मैं खुद नहीं लेती वही दूसरों को देती हूँ तो क्या वह उपकार है ? वह सेवा है ? या छल है ?

मैंने कहा—आपको इस तरह नहीं सोचना चाहिए।

पर अपने सम्बन्ध में उन्हें समाधान नहीं था। जान पड़ा कि उनको खयाल है कि उमर व्यर्थ बीतती जा रही है। रह-रहकर उन्हें अपने उन सपनों की याद हाती थी जो कॉलेज में पढ़ने के वक्त उनके मन में घूमा करते थे। उनकी बातों से आभास मिलता था कि उनके गिरिस्ती न होती तो वह डॉक्टरी से कमाई न करती। उन्होंने कहा कि अगर उम्र नया जन्म मिले तो वह अपने को इन्कार करके न चलें फिर चाहे उसका कुछ भी परिणाम आगे हो। वह जीवन का आरम्भ जैसे नये सिरे से करना चाहती थीं और प्रस्तुत जीवन को गलत शुरू हुआ समझकर मानो उसे यहीं खत्म हुआ देखना चाहती थी।

मुझे यह सब देखकर तकलीफ हुई। मैंने कहा—ऐसी अनावश्यक बातों को आप ध्यान में लाती ही क्यों हैं ?

हँसकर बोलीं—आवश्यक क्या है ? क्या यह डॉक्टरी ? मोटर ? मकान ? पति ?

मैं इस प्रकार के उत्तर के लिए प्रस्तुत था। तो भी मैंने कहा—हाँ यह सब-कुछ क्या अनिष्ट है ? अनिष्ट कुछ नहीं है। आप अपने को वृथा कष्ट क्यों देती हैं ?

उन्होंने हँसकर कहा—आपको मेरे चारों ओर कहीं कुछ कष्ट का

बहाना भी दीखता है ? कौनसा आराम है जो मैंने अपने को नहीं दे रखा ? जिन्हें कष्ट है वे और हैं। मैं उसके लायक नहीं हूँ।

मैंने कहा—आपकी बातें मुझे सुख नहीं पहुँचातीं।

बोली—ओ अच्छा! आपको जो कष्ट दिया उसके लिए क्षमा चाहती हूँ। अब कष्ट नहीं दूँगी। लेकिन स्त्री की कोई बात सच नहीं माननी चाहिए।

कहकर खूब हँसने लगीं।

मैंने बात टालने के लिए कहा—कविता का आरम्भ आप नहीं कर दे रही हैं यह तो मैं समझ सकता हूँ न! क्योंकि अन्यथा मुझे अपने को अपराधी मानना होगा।

बोली—कविता कोई सुख की तो बात है नहीं। शायद लाचारी की ही बात है। क्यों ?

मैंने कहा—जो हो यह आश्वासन मुझे चाहिए कि अपने से और मुझसे आप रुष्ट नहीं रहेंगी।

रुष्ट !—इतना दोहराकर फिर हँसने लगीं।

इस भाँति अब तक मैं लौटकर चला हमारी बातचीत कुछ ऐसे विनोदी ढब पर होती रही कि प्रतीत हुआ कि गहरे तकलीफ की बातें ही उनके मन को नहीं घेरे रहती हैं कुहरा का भी वहाँ काफी अवकाश है। पर इस समय वह और भी अबूझ दीखती हैं।

५

कुछ दिन बाद की बात है कि दीपक ने मुझे चौंका दिया।

आकर कहा—देख ली आपकी महिला-रत्न ! उनके तो यह चालाकी मुझसे में मात है !

मैंने कहा—महिला रत्न ! कौन ? क्या मतलब है तुम्हारा ?

उन्होंने कहा—अभी नहीं आपकी कोठी मलरानी । आप जानते हैं कि कोठरी क्या है ? कोठरी है परदा । और परदे के पीछे क्या है, सो भी आप जानते हैं ? पीछे जाने क्या नहीं है !

मैंने कहा—श्रीधर मैं नहीं जानता नहीं जानना चाहता । और बात हमेशा शिष्टता के साथ करनी चाहिए ।

पर श्रीधर जाने क्या-कुछ कानों की राह अपने मन में भर लाए थे । उन्हें चुप रहना कठिन था । उन्होंने कुछ ऐसी अनर्गल कहानियाँ सुनाईं कि मैं विश्वास तो कर ही न सका किन्तु श्रीधर को डपट बैठा । कहा—मनगढ़न्त बातें नहीं कहनी चाहिए, श्रीधर!

श्रीधर बोले—तो आप इन्हें झूठ समझते हैं ?

मैंने कहा—कुछ और समझने की बात तो पीछे है, अभी तो मैं इन्हें सुनकर अनसुनी करना चाहता हूँ ।

श्रीधर तब बोले—ये बातें उनकी कही हुई हैं जो इस घर के बहुत घनिष्ठ हैं, वह रायसाहब

रायसाहब का नाम सुनकर मैं चकित रह गया । सच ही उस परिवार में उनका काफी आना-जाना था । फिर भी मैंने श्रीधर से कहा कि जो हो वह सब-कुछ मैं नहीं जानना चाहता हूँ । किसी के भेदों से मुझे मतलब नहीं । भेजिए अपनी बातें । मेरे मन में तो श्रीमती मलरानी के लिए आदर भाव है ।

श्रीधर ने उस समय नाम-धाम, पता-ठिकाना ब्यौरेवार बताकर कुछ और कहानियाँ कह सुनाईं । उन कथाओं में कलाकारी की इज्जत पर आ बनी थी और नायक रायसाहब थे ।

सुनकर मेरे मन में पीड़ा हुई । मैंने श्रीधर को डपटकर कह दिया कि वाहियात नहीं बकना चाहिए ।

श्रीधर सुनकर मुस्करा दिए । उनका विश्वास था कि मेरा मन ही उस विषय में इस योग्य नहीं रहा है कि मैं तटस्थ वृत्ति से कुछ समझ-बूझ सकूँ । उन्होंने कहा कि कहीं मैं भी तो मायर के वश नहीं हो रहा

कहाना भी दीखता है? कौनसा आराम है जो मैंने अपने को नहीं दे रखा? जिन्हें कष्ट है वे और हैं। मैं उनके लायक नहीं हूँ।

मैंने कहा—आपकी बातें मुझे सुख नहीं पहुँचातीं।

बोली—लो अच्छा! आपको जो कष्ट दिया उसके लिए क्षमा मांगती हूँ। अब कष्ट नहीं दूँगी। लेकिन स्त्री की कोई बात सच नहीं माननी चाहिए।

कहकर खूब हँसने लगी।

मैंने बात टालने के लिए कहा—कविता का आरम्भ आप नहीं कर रही हैं यह तो मैं समझ सकता हूँ न! क्योंकि अन्यथा मुझे अपने को अपराधी मानना होगा।

बोलीं—कविता कोई सुख की तो बात है नहीं। शायद लाचारी की ही बात है। क्यों?

मैंने कहा—जो हो, यह आश्वासन मुझे चाहिए कि अपने से और मुझसे आप रुष्ट नहीं रहेंगी।

रुष्ट?—इतना दोहराकर फिर हँसने लगीं।

इस भाँति जब तक मैं बोलकर चला हमारी बातचीत कुछ ऐसे विनोद की सतह पर होती रही कि प्रतीत हुआ कि सदा तकलीफ की बातें ही उनके मन को नहीं घेरे रहती हैं। कुतूहल का भी वहाँ काफी अवकाश है। पर ऐसे समय वह और भी अनबूझ दीखती हैं।

४

कुछ दिन बाद की बात है कि नौकर ने मुझे चौंका दिया। आकर कहा—देखा जी आपकी महिम-राम! उधर तो बड़े कारनामे सुनने में आते हैं।

मैंने कहा—भद्दिसा रत्न ! कौन ? क्या मतलब है तुम्हारा ?

उन्होंने कहा—अभी नहीं आपकी लेडी असरानी । आप जानते हैं के डॉक्टरी क्या है ? डॉक्टरी है परदा । और परदे के पीछे क्या है, सो भी आप जानते हैं ? पीछे जाने क्या नहीं है !

मैंने कहा—भीचर, मैं नहीं जानता नहीं जानना चाहता । और बात हमेशा शिष्टता के साथ करनी चाहिए ।

पर भीचर जाने क्या-कुछ कानों की राह अपने मन में भर आए थे। उन्हें चुप रखना कठिन था। उन्होंने कुछ ऐसी अनर्गल कहानियाँ सुनाईं कि मैं विश्वास तो कर ही न सका बल्कि भीचर को डपट बैठा। कहा—अनकहनी यों नहीं कहनी चाहिए, भीचर!

भीचर बोले—तो आप इन्हें झूठ समझते हैं ?

मैंने कहा—झूठ और समझने की बात तो पीछे है, असल तो मैं उन्हें सुनकर अनसुनी समझना चाहता हूँ।

भीचर तब बोले—ये बातें उनकी कही हुई हैं जो उस घर के बहुत मनिष्ठ हैं, वह रायसाहब

रायसाहब का नाम सुनकर मैं चकित रह गया । सच ही उस परिवार में उनका काफी आना-जाना था । फिर भी मैंने भीचर से कहा कि जो हो वह सब-कुछ मैं नहीं मानना चाहता हूँ । किसी के भेदों से मुझे मतलब नहीं । बेशिए अपनी जानें । मेरे मन में तो श्रीमती असरानी के लिए आदर भाव है।

भीचर ने उस समय नाम धाम, पता-ठिकाना ब्यौरेवार बताकर कुछ और कहानियाँ कह सुनाईं । उन कथाओं में कल्याणी की इज्जत पर था कभी भी और नायक रायसाहब थे।

सुनकर मेरे मन में पीड़ा हुई । मैंने भीचर को डपटकर कह दिया कि वाहियात नहीं बकना चाहिए ।

भीचर सुनकर मुस्करा दिए । उनका विश्वास था कि मेरा मन ही उस विषय में इस योग्य नहीं रहा है कि मैं तटस्थ वृत्ति से कुछ समझ-बूझ सकूँ । उन्होंने कहा कि कहीं मैं भी तो माया के वश नहीं हो गया

हूँ ? यदि ऐसा ही हो तब तो फिर मुझे कहीं दोष क्यों दिखाई देने लगा !

मैंने कहा—जबान हल्की न बनाओ। एक के दुख को अपना मजाक मिलना अच्छा नहीं।

श्रीधर ने हँसकर कहा—ओह! आप दुखी हैं!

मैंने कहा—श्रीधर तुम जानते हो कि हमारे समाज में स्त्री की स्थिति नाजुक है। अपनी ओर से उस स्थिति को और विषम बना देना क्या क्षम्य हो सकता है ? पुरुष का दोष दोष नहीं, वह पुरुषार्थ है। लेकिन स्त्री'

और अगली बार जब कल्याणी से मिलना हुआ तो मैं नहीं कह सकता किस प्रकार पर थोड़ी ही देर बाद मैं कह बैठा—देखता हूँ, आपको लेकर तरह-तरह के प्रवाद सुन पड़ते हैं।

सुनकर उन्होंने हँसकर दोहरा दिया—सुन पड़ते हैं न !

इस उत्तर पर मैं सहसा निरुत्तर-सा हो आया।

वह बोली—मैं ही नहीं, तब कौन कह सकता है कि वे सब गलत हैं। चबड़ा बनने के लिए रुई तो चाहिए ही। बेबात भला कोई बात चलती है! आपकी क्या राय है ?

मैं कुछ अचकचा आया। पूछा—क्या आप जानना चाहती हैं कि ऐसी बातें कौन उड़ाता है ?

उन्होंने कहा—शायद मैं जानती ही होऊँ।

"आपका क्या अनुमान है ?

'मेरे लिए अनुमान का सवाल ही नहीं है।"

"इसका मतलब तो यह हुआ कि आप निश्चय जानती हैं कि वह कौन है। फिर आप कुछ प्रतिकार क्यों नहीं करती ?"

बोलीं—प्रतिकार !

यह कहने पर एक उदास मुस्कराहट उनके चेहरे पर आ गई। आगे वह कुछ नहीं बोलीं।

मैंने उस समय कहा—सुनिए, शुद्ध रायसाहब

वह उस विषण्ण मुस्कराहट के बीच में ही रुककर और मुझे रोककर बोलीं—उनका मुझ पर बहुत ऋण है।

मैंने कहा—ऋण! क्या रुपया चुकाना है?

मुस्कराईं और बोलीं—कृपा का ऋण।

मैंने तब कहा—तो शायद उनकी कृपा के इस रूप का आपको पता न होगा।

उत्तर में वह धीमी होकर बोलीं—वह सब कर सकते हैं। बड़े लोग हैं।

मुझे उनकी बातों से तथ्य का कुछ अनुमान न मिला। मैंने कहा—उन रायसाहब से मेरी तो घनिष्ठता हो न सकती। मैं नहीं जानता कि फिर

हँसकर बोलीं—आप मुझसे नाराज होना चाहते हैं, आपको नाराज होने का हक है।

मैंने कहा—आदमी जो ठीक न हो उससे फिर परिचय

बोलीं—आपको मेरी आत्मा का ख्याल है? मैं कृतज्ञ हूँ।

मैं इसका आशय कुछ न समझ सका। इस वाक्य में मुझे अपनी अवज्ञा ही मालूम हुई होगी, अन्यथा मैं नहीं कह सकता कि उस समय एक भद्र महिला के प्रति मुझे अपने अधिकार की मर्यादा का ज्ञान क्यों काफी नहीं रहा। मैं कह बैठा—आप अगर चाहें तो रायसाहब से मिलना बन्द कर सकती हैं।

उन्होंने हँसकर कहा—अगर मैं चाहूँ?

इस प्रश्नवाचक उत्तर पर मुझे जाने क्या सूझा कि मैंने पूछा—अच्छा डॉक्टर भार्गव कौन है?

उनका चेहरा जाने कैसा हो आया। बोलीं—डॉक्टर भार्गव! भार्गव कौन?

मैंने कहा—आप कह सकती हैं कि आप उन्हें नहीं जानतीं?

ठोड़ी को हाथों में लेकर वह कुछ सोचती रह गईं, जैसे कुछ भूल रही हों। बोलीं—डॉक्टर भार्गव भार्गव कौन? हाँ, वो?

मैंने निर्ममतापूर्वक कहा कि आप ही सोचकर देखिए।

थोड़ी देर बाद एकाएक जैसे उन्हें कुछ सुध हुई। बोलीं—आपने आपने कहा कहीं भटनागर तो नहीं?

अनायास मैं कह उठा— हाँ-हाँ भटनागर।

और मैं अपने में ही बहुत लज्जित और सकुचित हो आया।

मेरी इस भूल और झेंप पर वह बहुत ही हँसी। मैं एकदम हतप्रभ हो गया।

तब वह मानो दयापूर्वक बोलीं—आपकी तरफ ही तो उनका घर है। आप नहीं जानते? और कौन हैं वह एक डॉक्टर हैं।

कहकर मेरी झेंप पर वह फिर हँसने लगी। बोलीं—क्या आप सब कुछ जानना चाहते हैं? एक स्त्री का सब-कुछ जानना चाहते हैं? लेकिन सब तो ईश्वर ही जानता है।

उनकी इस उक्ति पर तो मानो मेरा खात्मा ही था। लेकिन देखता क्या हूँ कि ईश्वर शब्द निकलते-निकलते उनके चेहरे की हँसी गायब हो गई और वहाँ एक गाढ़ खिन्न भाया। उस वक्त मेरे लिए व्यंग्य नहीं था व्यथा ही थी। उस चेहरे को देखकर उस समय मैं अपने को अपराधी अनुभव करने लगा। मेरे मन में इस रमणी के प्रति जो कम चिन्, एक असम्मान का भाव उठा था वह मुझे अपना ही अपमान मालूम होने लगा।

बोलीं—एक दिन मैं आपसे खुद ही कहना चाहती थी। लेकिन आपको पूछने की जरूरत होगी ऐसा ख्याल न था।

मैंने कहा—वह सब जाने दीजिए। मुझे उस पर खेद है। हमारा समाज संशयशील है। मेरे संस्कारों में भी वह दोष रह सकता है। कृपा कर मेरी बातों को मन में न लीजिएगा।

उन्होंने हँसकर कहा—आप मुझसे डरिए नहीं और मुझे निर्दोष भी न मानिएगा। स्त्री निर्दोष हो सकती है? पहला दोष तो यही कि वह स्त्री है।

मैंने उस प्रसंग को टालना चाहा मुझे वह भारी हो रहा था।

हा—यह आप क्या कहती हैं ? छोड़िए भी।

बोलीं—मक्खन दोषों से छुटकारा भी तो है। मैं जानती हूँ कि मैं अधिक काल नहीं जीऊँगी। ऐसा जीना कठिन है और व्यर्थ है।

मैं उन्हें रोक न सका। वह कहती रहीं—देखिए न कितना बोझ है, कितना बोझ! सिर का बोझ सँभल भी जाए, पर मन का यह बोझ कब तक सहारा जा सकता है! और मैं किसीसे उस मन को खोल नहीं सकती। परदेस है यहाँ कौन अपना है? और अपने देश में भी तो अब मैं बिरानी हूँ। अब की पढ़ी हूँ विलायत गयी हूँ। यहाँ की नहीं वहाँ की नहीं। इससे अपना बोझ बाँट भी तो नहीं सकती। समझती हूँ कि बाँटने से चित्त हलका हो जाता होगा। पर और भी तो अपने को लेकर व्यस्त हैं। सबको सँभालने को अपनापन है। मुझे दुख तो यह है कि मैं अपने डॉक्टर से भी तो कुछ नहीं कह सकती।

कहते-कहते वह एकाएक रुक गईं, जैसे अनकहनी कहने के किनारे आ गयी हों। अनन्तर एक भरी साँस खींचकर बोलीं—सब भाग्य है और क्या!

सन्ध्या बीत चली थी। बिजली का प्रकाश स्पष्ट उन पर पड़ रहा था। कहकर वह चुप हो गई थीं। मुझे कुछ सूझ न रहा था। ऊपर पंखा चल रहा था। उसकी धीमी-धीमी आवाज आती थी।

आखिर उस शान्ति के असमंजस को भंग करते हुए मैंने कहा—आप अपने भाग्य से नाराज नहीं हो सकतीं। जाने कितने हैं जो आपके भाग्य पर ईर्ष्या करते होंगे!

बोलीं—यही तो यही तो। और मैं भाग्य से नाराज नहीं हूँ। अपने भाग्य को दुर्भाग्य बनाने वाली क्या मैं ही नहीं हूँ? मैं तो अपने से ही नाराज हूँ। सोचती हूँ कि मैंने अपना यह क्या कर डाला!

कहकर वह ऐसे देखने लगीं जैसे कहीं न देख रही हों उन आँखों में जैसे दृष्टि ही न हो। दृष्ट की ओर से आँखों को यों अनदेखती बना-कर क्या वह अदृष्ट को देखना चाहती थीं?

मैंने उस समय अवश भाव से कहा—क्यों क्यों क्या बात है?

हठात् सँभलती हुई वह बोली—कुछ नहीं, कुछ नहीं।

मैंने कहना चाहा कि डॉक्टर साहब... पर मैं बात पूरी नहीं कर सका। उन्होंने व्यतिव्यस्त भाव से घड़ी की ओर देखकर कहा—ओह, आठ हो गया! मैं भूली। मुझे एक जगह जाना है। अच्छा तो आप...

कहती हुई वह उठ खड़ी हुई और वहाँ से चल दी। मैं भी खड़ा हो गया।

बाहर ही द्वार पर डॉक्टर आते हुए दीख गए। उन्होंने पत्नी से कहा—मुझे देर हो गई। तुम तैयार हो न?

जैसे झुँझलाहट के साथ पत्नी ने कहा—कब से तो तैयार हूँ! लेकिन अब मैं नहीं जाऊँगी। जाने का यह वक्त है।

पति ने कहा—सो देर ऐसी कुछ नहीं हुई, चलो-चलो।

फिर मुझे देखकर बोले—ओह आप! आइए, बैठिए!

मैंने कहा—नमस्कार! पर मैं देर से यहीं हूँ।

इस पर कुछ निरर्थक भाव से बोले—जी हाँ बैठिए।

पत्नी बोली—यह काफी देर से तो यहीं बैठे हैं। और हमको भी जाना है। अच्छा वकील साहब आप जाइए!

डॉक्टर ने कहा—अच्छा-अच्छा और शेकहैंड के साथ मुझे विदा किया। कल्याणी ने भी हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

•

५

कुछ दिन बाद उधर से जाना हुआ तो दवाखाने में डॉक्टर मिले। पूछने पर उन्होंने बताया—पत्नी अपने देश गयी है, हाँ कराची। कोई दो सप्ताह लौटने में लगेंगे।

मैंने डॉक्टर से कुछ देर इधर-उधर की बातचीत की। कुशल-क्षेम

पूछा। मालूम हुआ कि सब आनन्द है 'व्यवसाय ? जी हाँ सब आपकी कृपा है। सब ठीक है। उन्होंने हमारे परिवार का समाचार पूछा और सब कुशलता जानकर प्रसन्नता प्रकट की।

लेकिन मेरा मन लौटकर कुछ हर्ष अनुभव नहीं कर रहा था जैसे डॉक्टर अनमने हों और मैं उन्हें सब न रहा हूँ जैसे कुछ उन्हें न रच रहा हो। उनसे मिलने पर मैं यह भी नहीं जान सका कि उनके वास्ता उन के लिए मैं क्या काम आ सकता हूँ। अपने और उनके बीच मैंने इस बार कुछ व्यवधान अनुभव किया जो मुझे प्रीतिकर न हुआ। लेकिन मुझे कुछ सूझ नहीं कि क्या हो सकता है और मुझे क्या करना चाहिए।

खैर! इसके कोई चार-एक रोज बाद श्रीधर खबर लेकर आये कि श्रीमती असरानी एक कोठरी के अन्दर बन्द पड़ी हैं उन्हें खूब मारा गया है और दो रोज से उन्होंने कुछ खाया पिया नहीं है।

मैं श्रीधर को जानता हूँ। मैंने कहा—श्रीधर, क्या फिजूल बकते हो! वह तो कराची थीं। कब लौटीं ?

श्रीधर ने कहा—कराची! कराची क्या होता है ?

मैंने कहा—तुम्हें नहीं मालूम ? वह कराची गयी हुई थीं न ?

श्रीधर बोले—खूब! अभी वह शहर से कहीं बाहर नहीं गयीं। कई रोज घर से गायब जरूर रहीं। लेकिन रहीं नहीं कहीं। मिलीं तो पति ने उनकी खबर ली। कह तो रहा हूँ कि वह अब कोठरी में मुँदी पड़ी हैं और दो रोज से खाना तक नहीं खाया है।

मैंने कहा—छिः कहते क्या हो ? अभी चौथे दिन की बात है, खुद डॉक्टर ने बताया कि कैसे गयी हैं, आने में दो हफ्ते लगेंगे।

श्रीधर हँसने लगे।

मैंने व्यग्र होकर पूछा—तो क्या तुम्हारी बात सच है ? ठीक बोलो जी!

श्रीधर ने कहा—सच नहीं तो क्या मैं झूठ भी कहता हूँ ?

इस पर मैं इरादे के साथ उनके दवाखाने गया। वहाँ पहले की भाँति डाक्टर असरानी अकेले बैठे थे। मुझे देखकर कहने लगे—आइए,

और उस रोज रात होने तक वह घर ही रहीं। साग-भाजी ए
से बनाई और आसन पर बैठकर रोटी खाई। शरीर कुछ उनका पूर
न था तो भी बच्चों के साथ तरह-तरह के खेल खेले। कई पड़ोस के बाल
भी खिंच आए थे। वापस जाने लगी तो बोलीं—हर इतवार मैं छु
रखना चाहती हूँ। क्या आगे भी आपके यहाँ आ सकती हूँ ?

मैंने कहा—यह सवाल करने लायक अब आप नहीं रही हैं।

हँसकर बोलीं—हाँ मैं किसी लायक नहीं हूँ।

मैंने कहा—ग़नीमत है कि आप यहाँ से जाने लायक हैं।

वह बहुत हँस आईं। बोलीं—यही बात है। मैं हर घर से निकल
लायक अवश्य हूँ।

मैंने कहा—मैं अपनी ज़बान बन्द रखना चाहता हूँ नहीं तो य
घर आप ही का घर है।

कहने लगीं—मैं तो अपने यहाँ किसी को निमन्त्रण दे नहीं सकती
लेकिन कल आप आएँगे ? इनको भी साथ लाइएगा। कल मेरा जन्म
दिन है। बहनजी कल ज़रूर आइए।

वचन के अनुसार अगले दिन हम गए। उस समय उन्होंने अपे
शहर के कपड़े पहने थे और अभ्यागतों की सेवा में लगी हुई थीं। काफ
लोग निमन्त्रित थे। बन्दोबस्त पश्चिमी ढंग का था। डॉक्टर असरा
व्यवस्था के कामों में व्यस्त थे। उनके दवाख़ाने के खुलने का भी वर्ष-दि
आज ही था। निमन्त्रण उसी के उपलक्ष में था। इस बार आज के दि
एक अतिरिक्त आरोग्य भवन भी खोला जाने वाला था। उसमें फ़ीस ना
ली जाएगी और दवा भी मुफ्त दी जाएगी। आरम्भ में इस बेहद व
व्यवस्था थी। जलपान के अनन्तर इस विषय में मिसेज असरानी ने स
उपस्थितों की अभ्यर्थना व साथ क्षमा प्रार्थनापूर्वक अब जी में कहा ि
उनका विचार अब अपना अधिकांश समय इस निःशुल्क आरोग्य-सदन मे
देने का है। इस दवाख़ाने को अब वह कुल एक घण्टा दिया करेंगी
क्योंकि जिनके पास इलाज के लिए पैसा है उनका सवाल नहीं है। पैस
जिनके पास नहीं है सवाल उन्हीं का है। मेरे देखने में आया है की

कहा—यह आपसे किसने कहा ?

मैंने कहा—क्यों यह झूठ है ?

"डॉक्टर ने कहा ?

मैंने कहा—नहीं तो ।

"तो फिर किसने कहा ? हाँ वह झूठ है   नहीं वह कुछ नहीं । मैं उसका सही नहीं कह सकती तो वह गलत नहीं तो क्या है ? और अगर मेरी गलती पर उन्होंने कुछ कह-सुन लिया हो तो क्या यह याद रखने की बात है ? आप क्यों यह नहीं सोचते कि मैं एक पराए घर में इतने दिन रही । और कोई होता तो स्त्री को जीती भी छोड़ता ? उन्होंने तो बस थोड़ा कह-सुनकर जाने दिया । आप उस बात को मन में से निकाल दीजिए । मैं कहती हूँ जो भी हो पति मुझे बहुत चाहते हैं ।

मैंने कहा—अच्छा जाने दीजिए उस बात को ।

बोली—नहीं सबूत देती हूँ ।

मैंने कहा—जाने भी दीजिए ।

बोली—सुनिए तो । सुनने लायक बात है । ऐसी कथा आपने सुनी न होगी ।

इतना कहकर वह आगे बिना कहे हँसने लगी । इतना हँसी इतना हँसी कि

मैंने कहा—बात क्या है ?

हँसते हुए बोली—पूरी कहानी फिर के लिए छोड़नी होगी । लेकिन मैं निकली उस शाम को मालूम है डॉक्टर साहब ने क्या किया ?

मैंने पूछा—क्या किया ?

उत्तर में बोलना चाहती थी कि फिर हँसी आ जाती थी । आखिर ज्यों-त्यों कृत्रिम गम्भीरता से बोली—डॉक्टर मेरे बिना बहुत उद्विग्न हो गए—बहुत व्यग्र बहुत परेशान । उन्हें शायद पछतावा हुआ । उसी सोच में सीधे वह कहाँ पहुँचे बताऊँ ? पहुँचे डॉ॰ भटनागर के मकान की देहली पर । दो और आदमियों को साथ लेते गए । सोचा होगा कि जाने क्या मौका बने ! अन्दर जाकर नीचे चौक में वे ही खड़े-खड़े जोर से ऊपर

की ओर पुकारकर कहा 'डॉ० भटनागर हैं?' उस आवाज पर ऊपर बाल-बच्चे और घर की स्त्रियाँ और शायद पास-पड़ोसिन आकर कुतूहल से झाँकने लगे हमें। बार-बार डपट के पूछा 'डॉ० भटनागर कहाँ हैं?' वह घर पर नहीं थे। पर कहीं पास ही थे। नौकर भागा-भागा उन्हें बुलाकर लाया। हमारे डॉक्टर ने आते ही जोर से उनके मुँह पर कहा, 'मेरी स्त्री को तुम उड़ाकर ले आए हो। लाओ निकालकर दो।'

यहाँ फिर वह बरबस हँस उठीं। हँसते-हँसते आँखों में आँसू आ गए। बोली—मैं सच कहती हूँ आपसे। उन्होंने कहा 'मेरी बीवी को तुम पकड़ लाए हो। बताओ कहाँ है?' इतना कहकर भटनागर को उन्होंने दोनों हाथों से पकड़ लिया। भटनागर बेचारे बड़े चक्कर में पड़े। वह खुद पूछने लगे कि क्या मैं खो गई हूँ, क्या बात है, कहाँ गयी हैं। हमारे डॉक्टर ने इस पर और भी जोर-जोर से कहा 'मैं सब चालाकी समझता हूँ। अभी घर की तलाशी लूँगा।' भटनागर बेचारे काम-काजेदार आदमी। अजब मुसीबत उन्हें मालूम हुई होगी। सोचा होगा कि झगड़ा कौन बढ़ाए। सो उन्होंने अधिकार से और अभिमान से काम नहीं लिया। नहीं तो वह समझते थे कि आप दीवाने तो नहीं हो गए हैं। लेकिन भटनागर साधारण भाव से हमारे डॉक्टर को ऊपर ले गए। उनके दोनों साथी भी साथ-साथ गये। (अकेले जाने को डॉक्टर राजी न थे।) समूचा घर देखा। एक-एक कमरा देखा और ट्रंक देखे और बक्स देखे और नीचे बिस्तर खुलवाए। आप कहेंगे कि मैं इतनी मूरख तो नहीं हूँ। यह तो ठीक है लेकिन क्या जाने कि जादू से हो गई हूँ।

कहकर वह खिलखिलाकर हँसने लगीं। पर वह हँसी मेरे लिए हास्यजनक किसी तरह नहीं हो सकी। मेरे मन में उससे व्यथा ही पैदा हुई जैसे उनके भीतर हँसी से दारुण दुःख और हो।

बोली—आप यह पूछते हैं कि बात क्या थी। बात यह थी कि मेरी पिछली बीमारी में डॉक्टर भटनागर मुझे दो-चार बार देखने आये थे। एक रोज डॉक्टर ने बात-बात में कहा कि भटनागर अच्छा आदमी नहीं है। मैंने कहा मुझे तो अच्छे आदमी मालूम होते हैं। उन्होंने कहा

सालों में कहुतों का रोग ही पैसा है। बग्गी फीस के एवज में ही उन्हें आराम पहुँचाया जा सकता है। पैसा उनका अधिक खर्च हो इसीमें उन्हें इलाज की कीमत मालूम होती है। इस तरह के पैसे के रोगियों की सेवा से एकदम हाथ खींच लेने का मेरा साहस नहीं है। पैसा कम प्रलोभन नहीं है। (तालियाँ) प्रलोभन में न पड़ना मेरे लिए नाम की बात भी नहीं है। (तालियाँ) आप लोग जानते हैं बिना पैसे हम सभ्यता पूर्वक उठ-बैठ भी नहीं सकते। (तालियाँ) इसलिए एक मध्ट के लिए इस जगह फीस वाले रोगियों के लिए भी मैं अवश्य सुलभ रहूँगी। सुलभ का मतलब आप जानते ही हैं दुर्लभ! (तालियाँ) अधिक सुलभ पैसे के विरुद्ध है। (तालियाँ) पर इस आमदनी का सब रुपया इस आरोग्य भवन के काम आएगा

भवन का ट्रस्ट किया गया और मुझे बड़ा अचरज हुआ कि मेरा नाम भी ट्रस्टियों में है।

खैर! धीरे-धीरे सभी सम्भ्यागत चले गए। मैं भी अभी चलूँ। लेकिन पत्नी को भीतर से छुट्टी नहीं मिल रही थी। मैंने डॉक्टर अमरानी से कहा कि इस विषय में मेरी सहायता करें, उन्हें भेज दें। अब चलना चाहिए।

डॉक्टर गये तो खुद रुके रह। काफी देर हो गई। तब मैं हिम्मत बाँधकर स्वयं अन्दर गया। राह में देखता हूँ डॉक्टर मुँह नीचा किये कुछ बेखबर-से आ रहे हैं। मैंने उन्हें टोककर कहा—डॉक्टर साहब कहिए।

वह आ रही हैं, अन्यमनस्क भाव से यह कहकर वह आगे बढ़ गए।

तभी कल्याणी आती हुई मिलीं। मैंने कहा—शायद उन्हें आपकी ओर से अभी छुट्टी नहीं मिली है मेहरबानी कीजिए!

वह प्रसन्न भाव से बोलीं—वह कहीं चा नहीं गई हैं बेताब न हूजिए। मैं भी चल रही हूँ।

मैंने कहा—आप क्यों? हम चले जाएँगे।

बोली—मैंने कह तो दिया कि साथ बस रही हूँ।

मेरे बहुत इन्कार करने पर भी कुछ आग्रह करती हुई वह

साथी न इस पर न आई। मैंने रास्ते में कहा—दूसरे की चर्चा

मुझसे नहीं की।

बोली—क्या इतना भी आपका विश्वास मैं नहीं कर सकती

घर आकर देखता हूँ कि वह आराम से बैठ गई है और

उधर की बात करने लगी है। कुछ देर में पूछा—क्या आप बाजार

भी कुछ हाल-चाल रखते हैं?

मैंने पूछा आपका मतलब क्या है?

'सुनती हूँ कि एक चर्चा हर-किसी की जुबान पर है। आप

नहीं सुना?

मैंने कहा—क्या? मुझे क्या-कुछ सुन लेना चाहिए था?

उन्होंने हँसकर कहा—वह जरूरी खबर है और सुनने लायक

यह यह है कि हर कोई जानता है कि मैं पाँच रोज पर-पुरुष के

रहकर आई हूँ। आप इतना तक नहीं जानते? लोग तो इससे भी

बहुत-कुछ जानते हैं।

मुझे विस्मय का मौका कहाँ था! मैंने हठात् बात टालने की

कर कहा—मुझे तो बतलाया गया था कि आप सैर गयी हैं।

सुनकर वह और भी हँस पड़ीं। फिर कहने लगी—क्या

अब जिज्ञासा नहीं होगी है कि फिर डॉक्टर साहब मुझे घर में

हुए हैं?

मैंने कहा—यह आप कह क्या रही हैं?

"असल में वह मुझे बहुत   वह बहुत उदार हैं।

मैंने कहा—मैंने सुना है

बोली—अच्छा आप भी आखिर सुन सकते हैं! मेरे बारे

भी लोग सुना हो सब सही है। मैं मिन्नार नहीं हूँ।

सुना है आपको मारा-पीटा भी गया।"

सुनकर उनका चेहरा पीला और फक हो आया। घबराकर

घ मेरा है न उनका है। सब जगन्नाथजी का है। जगन्नाथजी
बार में अनबन क्या ?

ने कहा—मैं अब भी कुछ नहीं समझा।

हृयत् वह हँसी। बोलीं—आप ईश्वर को नहीं मानते हैं न। इसीसे
ही कोई बात आपकी समझ में नहीं आती। मैं क्या करूं ?

मैंने कहा—हो सकता है वह मेरे समझने योग्य न हो। जाने
ए।

हँसकर बोलीं—बात असल यही है। आप नहीं समझेंगे। फिर
ो आप पूछने लगते हैं और समझना चाहते हैं उसके लिए बल्कि
ज ही हूँ। असल में मैं कुछ बताना चाहती हूँ। कुछ-की-कुछ
धि बातें में मुझे सुख नहीं है। वह भी बातें मुझे क्या समझते हैं।
न खैर सुनिए

मैं चुपचाप सुनने लगा।

"विवाह से पहले मैं कुछ थी। विवाह बिना मैं रह सकती थी।
बोझ मुझसे उठ सकता था। फिर भी मैं अविवाहित नहीं रही।
तो वह दीजिए नहीं रह सकती थी। क्योंकि बड़ी होता है जो
बाधा होता है। पर मैं अकेली अपने को भारी नहीं थी। मेरी
किताबें उसी काम लिखी गई। खैर, विवाह हुआ यह एक कहानी
पर छोड़िए। विवाह से स्त्री पत्नी बनती है। पत्नी याने गृहिणी।
ो से पहले स्त्री कुछ नहीं होती बस वह कन्या होती है। पर मैं कुछ
मेरी कन्या न थी डॉक्टर थी। अब सवाल है मेरी शादी और मेरा
टरी मेरा पत्नीत्व और मेरा निजत्व ये परस्पर कैसे निभें।

कहकर उन्होंने मुझे ऐसे देखा जैसे मैं हूँ ही नहीं जैसे मेरे अभाव
ीधार के सामने भी यह सवाल इसी प्रकार रखा जा सकता है।

वह बोलती रहीं—हाँ सवाल यह है। अब अगर किसी को यह
ब है कि मैं उनकी गृहिणी की तरह रहूँ तो मुझको भी यह मान्य
। है। तब गिरस्ती सँभालना मेरा काम होगा सेवा के अतिरिक्त
मेरा वास्ता नहीं। तब मुझे बाहरी काम या बात या आदमी से

मैंने कहा—मेरी कामना है कि डॉक्टर की साहसिकता सुफल हो।

चलते-चलते उन्होंने उत्तर दिया कि हाँ वह साहसी हैं। नहीं तो मैं- *मैं क्या विवाह के योग्य थी ?*

यह वाक्य सुनकर मैं सन्न-सा रह गया, कुछ समझ नहीं सका। लेकिन कहकर वह तो फिर थोड़ी देर भी नहीं ठहरीं चली ही गईं।

७

कुछ दिनों में डॉक्टर सचमुच यहाँ से चले गए। वह मन में बड़ा मनसूबा बाँधकर दूर देश गये थे।

यह जानकर और इधर उनका समाचार भी न मिलने के कारण मैं उस ओर गया तो कल्याणी मिलीं। मिलीं तो पर जैसे मन उनका उतरा हो।

मैंने कहा—डॉक्टर साहब गये ? क्या एक मुद्दत के लिए गये हैं ?

उन्होंने कहा—हाँ देखिए, कब लौटते हैं !

मैंने कहा—मुझे माफ कीजिएगा। आपकी तबीयत तो ठीक है ?

बोलीं—ठीक है।

मैंने अपनी ओर से समाधान के ढंग पर कहा—आप किसी तरह की चिन्ता न कीजिएगा।

बोलीं—चिन्ता किस बात की करूँ भी ?

मुझे उनकी बातों से आश्वासन नहीं मिल रहा था। मैंने कहा—मुझे आशा है कि डॉक्टर किसी अनबन के कारण नहीं गये हैं।

बोलीं—मैं भी यही विश्वास करना चाहती हूँ।

मैंने कहा—मैं समझा नहीं।

बोलीं—मैं सब बताती हूँ। अच्छा हुआ आप आ गए। सुनिए, न

दिया। मामा ने कहा—तुम अगर अपनी स्वतन्त्रता और अपने सम्मान की रक्षा में स्त्री को अरक्षा में छोड़कर असहयोगपूर्वक चले जाना चाहते हो तो चले जाओ। तुम्हें शान्ति मिले। हमारी चिन्ता तुम्हारी बाधा न बने। हम स्त्रियाँ अपने को सह लेंगी। पर मामी यह असमय ही उनका अभिमान था।

८

एक रोज उनका चपरासी बुलाता आ पहुँचा। वहाँ गया तो मालूम हुआ कि डॉक्टर वैद्य जाकर मुसीबत में पड़ गए। वकील की हैसियत से क्या मैं कुछ कर सकता हूँ?

डॉक्टर ने दो हजार रुपये मँगाए थे। नहीं तो, सिवा या जाने क्या जाएगा!

मैंने कहा—रुपया भेज देना चाहिए।

बोलीं—रुपया न भेजने का तो सवाल ही कोई नहीं है। लेकिन उसके बाद जल्दी ही और नहीं भेजने पड़ेंगे इसका आपको भरोसा है?

मैंने कहा—तो क्या किया जा सकता है?

बोलीं—आप खुद उधर जा सकें तो पूरा हाल भी मालूम हो जाए।

अनायास मेरे मुँह से निकला—मैं?

उन्होंने किंचित् स्मित से कहा—हाँ।

उनके उस विश्वस्त अधिकार भाव पर मुझे जाने कैसा मालूम हुआ! मैंने कहा—क्या आप यह सम्भव मानती हैं?

बोलीं—मेरे लिए आपका कष्ट उठाना क्या मैं असम्भव भी मान सकती हूँ? आपको काम बहुत है, फीस बहुत है। यही न?

मैंने कहा—हाँ यह भी। पर सब-कुछ यही नहीं। मेरे हाथ
कोई उपकार का काम न कराए। वह उपकार उन्हें अपकार ही जाएगा
यह क्या मेरे दुर्भाग्य की बात आप नहीं जानतीं ? ऐसा हुआ तो दु
असह्य होगा।

बोलीं—यह आप कैसी बात कहते हैं ? जानती हूँ बचने के लि
तो आप कुछ नहीं कह सकते।

मैंने कहा—आप ही सोचिए। मैं गलत कहता हूँ ?

वह बोलीं—और ! तो फिर ?

मैंने कहा—मैं एक मित्र को बम्बई फोन किये देता हूँ। वह
देख भाल लेंगे।

उन्होंने मेरा एहसान माना।

मैंने कहा—यह छोड़िए। एहसान बीच में आकर फासला डालता

वह बोलीं—आप सब हाल नहीं जानते।

कहकर देखता हूँ कि दृष्टि में उनके एक विचित्र कातरता आ
है। उनका मामला मुझे बहुत कष्टकर होता है। मैंने अपने साथ
लगाकर कहा—आप चिंता क्यों करती हैं ?

उन्होंने कहा—आप मानिए या न मानिए, मैं आपसे कहती हूँ
इस बार मैं नहीं बचूँगी।

मैंने डपटकर कहा—अशुभ न बोलिए।

कहने लगीं—मैं झूठ नहीं कहती।

मैंने कहा—अपने बस से बाहर की बात कहना सदा झूठ कहना
यहाँ बचना किसको है ? लेकिन जीना-मरना जिसके हाथ है उ
हाथ है। हम कौन जो उस पर मुँह खोलें।

वह शून्य की भाँति देर देखती रहीं। अनन्तर बोलीं—लेकिन
अभी क्यों जी रही हूँ ?

मैंने कहा—देखिए, जीने-मरने की बातें मुझसे न कीजिए। वे
मन से बाहर हैं। आपको तकलीफ क्या है ?

उन्होंने मुझे स्थिर दृष्टि से देखकर कहा—तकलीफ ? कुछ ना

नहीं पा सकेगा। और तब वह दवाखाना मेरा होगा। हिसाब-किताब मेरे हाथों में रहेगा। डॉक्टर इसमें राजी नहीं दिखे। तीन चार दिन फिर ऐसे ही बीत गए। मैं इन दिनों दवाखाने नहीं गयी। वह बड़े चिंतित दिखाई देने लगे। आखिर उन्होंने मुझसे हर प्रकार से क्षमा माँगी और जैसे बने प्रैक्टिस करने पर राजी होने को कहा। मैंने हँसकर कहा पैसा मेरे हाथ में रहे इसमें तुम्हें डर लगता है ? मैं खुद तुम्हारे हाथ में हूँ तब भी डर लगता है ? अच्छा चलो मैं पैसा नहीं लेती। लेकिन तब वह तुम्हारा नहीं होगा। वह जगन्नाथजी का है जो जगत्-भर के हैं। उनका प्रतिनिधि बनकर ही कोई धन का स्वामी हो सकता है। डॉक्टर साहब ईश्वर को बहक समझते हैं। वह इस बात पर राजी हो गए। मैंने कहा ईश्वर दीनानाथ हैं। इससे जो दीनों के हित में किया जाए, ऐसे किसी खर्च में तुम मेरा हाथ नहीं रोक सकोगे उसके सेवक की हैसियत से अपने लिए अधिक खर्च नहीं करोगे। डॉक्टर इन्हें कोरी कल्पना की भली-भली बातें जानकर एक-एक स्वीकार करते चले गए। मैंने भी अगले रोज से डॉक्टरी के काम पर आने की स्वीकृति दे दी। तब तक मैंने ट्रस्ट के विचार को भी साफ कर लिया था। सो अगले दिन लिखी-लिखाई योजना मैंने डॉक्टर साहब के सामने रख दी। उससे विरोध करते न बना। मैं नहीं कह सकती कि विरोध उनके मन में भी बिलकुल नहीं था या था। प्रकट में उन्होंने कुछ नहीं कहा। तो अब सब रुपया पहले एक जगह जमा होता है। बैंक के हिसाब में अब मेरा नाम हो गया है। बीमा पॉलिसी रोक दी गई है (इत्यादि)।"

अनन्तर क्षणिक चुप रहकर उन्होंने कहा— इसीसे कहती हूँ कि मैं अब कुछ नहीं हूँ।

मैं यह सब सुनकर कुछ असमंजस में रह गया। कहा—तब तो डॉक्टर साहब के जाने में कुछ कारण यह भी हो सकता है।

उन्होंने कहा—शायद हो भी सकता है। उन्हें अब यहाँ अपने पुरुषार्थ के योग्य काम का क्षेत्र नहीं मालूम हुआ। क्या जाने वह बताना चाहते हों कि बेचारी स्त्री से पुरुष की क्षमता कितनी है। उन्होंने कहा

था 'तुम मास म जितना कमाओगी देखना मैं एक बार में उससे कई गुना कमाकर दिखा सकता हूँ। तुम किसी भूल में न रहना। दवाखाने का हिसाब मेरे हाथ म आ जाने स शायद उन्हें आहत-भाव की प्रेरणा हुई हो। मैंने उन्हें रोका पर मेरे रोके वह रुके नहीं। मैंने कहा कि देखते तो हो मेरी हालत। इस समय मुझे कोई तो संरक्षक चाहिए। हाथ जोड़ती हूँ तुम जाओ नहीं। लेकिन वह मेरे रोके भी नहीं रुके। पुरुष का यही पौरुष तो हमें पराजित कर देता है। मेरी कमाई के आश्रित वह नहीं रह सकते थे।

कहकर मानो वह कष्ट की हँसी हँसीं।

अन्त में मैं चलने को हुआ तो उन्होंने कहा—क्या आप एक वचन देंगे?

मैं अपनी जगह से उठकर खड़ा हो गया था। उनके प्रश्न पर खड़ा ही रह गया कुछ उत्तर नहीं सोच सका।

"बैठिए। सुनते हैं बैठिए न!"

लेकिन मुझे समझ न आया कि बैठकर क्या मैं किसी तरह की कोई सान्त्वना की बात उन्हें कहने को पा सकूँगा।

'नहीं बैठिएगा?'

मैंने कहा—मैं अब चलूँगा।

निगाह बिना ऊपर उठाए ही वह बोलीं—अपनी इस हालत में इसके पीछे मैं किसका सहारा लूँगी यह शायद सोचकर भी आप मुझे रोक नहीं सकते थे न?

मैंने कहा—आप आगामी का सोच न करें।

बोलीं—सोच न करूँ यही कहते हैं न आप? अच्छा धन्यवाद! नमस्कार!

जिस स्वर में यह कहा गया उस पर चौंककर मैंने उन्हें देखा। यद्यपि आत्मविश्वास में नमस्कार करने की सुधि उस समय भी मुझे रह सकी पर उनकी उस उठी हुई निगाह को देखकर मुझसे और कुछ भी नहीं बन सका। घर चला ही आया। क्या करता? उस निगाह के अभियोग को कैसे बचाता? जैसे उस निगाह से उन्होंने समूची पुरुष-जाति को समय

में व्यस्त थी।

अगले दिन जल्दी-जल्दी में इस असमर्थता पर खेद प्रकट करने वह घर आई कि मेरे ध्यान पर भी मिल न सकी। उस समय वह उल्लसित मालूम होती थीं जैसे कोई चिन्ता उन्हें छू नहीं गई है।

मने कहा—मुझे खुद जानना चाहिए कि आपको अवकाश की कमी है। रोगी कब आपको छुट्टी देते हैं!

उन्होंने हँसकर कहा—हाँ-हाँ लेकिन आप तो जानते हैं ।

मैंने कहा—हाँ, डॉक्टर की मुश्किल मैं खूब जानता हूँ।

उन्होंने मेरी बात को अनायास अनसुनी करके कहा—आप जानते हैं कि यह सब व्यस्तता प्रपंच है।

जोर के साथ कहा—मैं यह बिलकुल नहीं जानता। बल्कि जानता हूँ कि उपयोगी कर्म में अपने को भूलकर लगे रहना ही धर्म है।

मोटर चलाते-चलाते उन्होंने हँसकर कहा—यह आपकी जानकारी है। पर भूलना कब तक चलेगा? मानिए आप सब प्रपंच है सब सपना है।

— इसके अनन्तर उनकी निगाह में मुझे फिर वही कातरता की झलक दीख आई। पर पलक बीतते ही हठात् दीखा वह मुस्करा भी रही हैं।

नमस्कार!

कहा और मोटर लेकर वह ओझल हो गई।

सच पूछिए तो मुझे उनका उल्लास सुन्दर नहीं हुआ। जैसे वह भीतर कुछ और है। एक चेहरा है जिसे आड़ लेने से काम चलने में मदद मिलती है एक रंग जो वास्तविकता को अन्यथा दिखा सके। चमक ऊपरी है, भीतरी जाने क्या है! लेकिन फिर भी वह उल्लास इतना स्वाभाविक और अनायास मालूम होता था कि मन यह भी न मानना चाहता था कि वह यथार्थ नहीं है। आखिर फिर यथार्थ क्या है? देखता हूँ कि गले की मोती अब नहीं है, हाथों में सोने की चूड़ियाँ बढ़ गई हैं और इयररिंग बहुत कीमती मैल के कानों में दीखने हैं। क्या यह यथार्थ नहीं है?

मुझे यह सब जैसे प्रश्न करता हुआ मालूम होता था। क्या यह उस

दिन वाला गरीबी का और अमीरी के हित का पत्र है ? यह मैं क्या देखता हूँ। क्या यह खर्च को मर्यादित करने का प्रमाण है ? निस्सन्देह वह कमाती है तो खर्च कर सकती है। कौन रोकने वाला है! लेकिन यह जाहिर करके कि मैं कमाना नहीं चाहती जो कमाई बढ़ाई जाती है वह भी क्या कमाई है ? क्या वह लूट नहीं है ? सद्भाव दिखाकर पहले परिचय जोड़ा जाए, साख बनाई जाए, फिर उस परिचय और साख में पैसे खींचे जाएँ यह क्या है ? यह अनीति नहीं है ? कुकर्म नहीं है ? है' और भीतर ठीक है।

लेकिन वह निबाह फिर क्या है जो अपने लिए माता सबसे भीख-सी माँगती है ? जो कहती मालूम होती है कि 'हाँ' सावधान यह धोखा है। पर पहले धोखे में ही आ रही हूँ सो बच्चू, मुझे क्षमा कर देना। मैं सबकी करुणा चाहती हूँ।

इस तरह मेरी समझ में कुछ नहीं आता। सच तो है अपनी ही नीति समझ में नहीं आती तो दूसरों की अनीति को समझ पाने वाला मैं कैसे हो सकता हूँ ?

तिस पर एक रोज डॉक्टर मसरानी घर आकर मुझसे कहने लगे—आपने उनका मन्दिर भी देखा है ?

मैंने कहा—मन्दिर ? मन्दिर क्या ?

इधर पत्नी के साथ डॉक्टर साहब की खासी फिर जम चली है। अब कुछ सब डॉक्टर के हाथ में है यद्यपि जाहिर में डॉक्टर सब बेलाग और तटस्थ रहते हैं। किसी बात में वह विरोध नहीं करते इससे पत्नी तो और भी किसी बात का विरोध नहीं करती। बस इतनी-सी युक्ति से पत्नी अनुगता हो गई है। उनका कहना था कि स्त्रियाँ अपनी नाक से आगे नहीं देख सकतीं। उन्हें बुद्धि होती है पास तक की। आस-पास के बाहर क्या है इसकी उन्हें सुध नहीं होती। इसलिए विरोध न करो तो उनसे चाहे जो करवा लो।

यह सब भूमिका-रूप में कहने के बाद डॉक्टर ने मन्दिर की चर्चा उठाई थी।

उस दिन के बाद से उनकी तरफ मैं यत्नपूर्वक नहीं गया। फोन मैंने ई कर दिया था और इसकी सूचना और अन्य आश्वासन लिखकर मी के हाथों भेज दिया था। खुद जाकर कष्ट ही हाथ आता।

कुछ दिन बाद खबर मिली कि डाक्टर आ गए हैं। मैंने सोचा—ो यह अच्छा हुआ। बम्बई के मित्र से मालूम हुआ था कि वहाँ व्यव रमियों के चंगुल में वह पड़ गए थे और उसमें काफी रुपया गँवा बैठे। रुपया सोच-फिक्र की चीज नहीं है लेकिन उसका देना जैसा सराह- य होता है उसका गँवा बैठना उतना ही शोचनीय मालूम होता है। : इधर से मैंने ध्यान अलग खींचा। जब जरा सोचता तो कल्याणी । वह कातर दृष्टि सामने हो आती। और चूँकि मैं उस दृष्टि का मत- ब नहीं समझ पाता था इससे कष्ट मुझे केवल काटकर रह जाता था। । मैं नहीं चाहता था कि मन उधर जोर-जाप से भी जाए। लेकिन मन ता राजमार्ग पर ठहरता है!

जो हो मैं उस ओर नहीं गया न असरानियों में से कोई आया।

लगभग महीना भर हो गया। शायद और अधिक। कबूल करूँ कि रानी सुख्द उधर की कोई खबर न पाने से मैं नाराजी अनुभव कर रहा ा। धीवर बीच-बीच में सुना जाते थे कि मिसेज असरानी की ख्याति आजकल खूब है और तरह-तरह के सार्वजनिक कार्यों में वह भाग लेती ौर पूछी जाती हैं।

मैंने कहा था—अच्छा तो है।

उन्होंने कहा था—जैसा अच्छा है सो कौन जानता है!

अखबारों में उनका नाम अब अक्सर पढ़ने को मिल जाया करता था। उनके आरोग्य-भवन ने नगर के विशिष्ट लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा था। अन्य महिलोपयोगी कामों में और साहित्यिक समारोहों में वह प्रमुख भाग लेने लगी थीं।

धीवर ने कहा था—यह सब जाल है।

धीवर तो शब्दों को यों ही मुँह से निकाल देता है। जाल है तो क्या कुछ पकड़ने के लिए यह जाल है यह समझ में न आता था। यों तो

आदमी का सारा पसारा ही प्रयास है। पर यह अपने से हारना क्या है! अपने को सारा ओर फैलाकर शायद उस फैलाव के भीतर अपने मन को ही पकड़ना चाह रहा है। वह रचता है यह रचना कि इन रचनाओं के व्यूह में बैठकर अपने को पा लेगा। आदमी यही करता है। सदा से यही कर रहा है। सृष्टि इसका नाम है। यही माया है। माया फैलाकर फिर सत्य को उसी के केन्द्र-रूप में खोज होता। माया की लीला में भी लीलाकार तो सत्य ही है न! इससे यों आशा मिसेज असरानी का प्रयास किसको पकड़ने के लिए है? मुख्य प्रश्न है। क्या अपने सिवा किसी और को? तो किसको? अगर अपने को पकड़ने के लिए वह है तो फिर उसमें विपरीत है? उसके सिवा और कर्तव्य ही क्या है? मानव क्या कुछ और भी सकता है?

आखिर जब काफी समय हो गया तो मैं ऊपर गया। डॉ० असरानी मिले। वह खुश थे और तबीयत में उत्साह मालूम होता था।

मैंने कहा—कहिए देर हो जाए?

उन्होंने कहा—जी हाँ।

अब फिर तो जाने की बात नहीं है न?

बोले—जी नहीं। देख लिया कि आदमी की हाय-हाय व्यर्थ है, संतोष ही ठीक है।

मैंने कहा—आप प्रसन्न हो रहे?

बोले—जी हाँ। सब आपकी कृपा रही।

बातचीत में मैंने कहा—इधर मुद्दत से मेरा ऊपर आना नहीं हुआ। सोचा चलूँ मिल आऊँ। आप उधर आएँ तो घर दर्शन दीजिएगा।

बोले—जरूर जरूर। लेकिन इधर काम बहुत बढ़ रहा है। (डॉक्टरी प्रैक्टिस को) तो दम मारने की फुरसत नहीं होती। यह-सब काम सिर पर पड़े रहते हैं जिन टालो जिन छोड़ो। सो मैं आऊँगा।

कल्याणी से मैं मिल नहीं सका क्योंकि वह किन्हीं मरीज़ को

मैंने कहा—मन्दिर कैसा ?

बोलीं—स्त्री की सनक और कैसा ?

मुझे मालूम हुआ और डॉक्टर ने भी नहीं छिपाया कि असल कारण उनके आने का यह है कि वह मेरी सहायता चाहते हैं। पत्नी में इधर जाने कैसे चिह्न प्रकट होने लगे हैं। व्यवसाय का ध्यान उन्हें कम है और न जाने क्या-क्या बातें उन्हें सूझने लगी हैं।

मैंने हँसकर पूछा—कैसे लक्षण और क्या बातें ?

बोले—यही धर्म, पूजा और आत्मा-परमात्मा का वहम।

मैंने कहा—धर्म तो अच्छी चीज है।

बोले—अच्छा सब है। सवाल सब मात्रा का है। नशा भी थोड़ा अच्छा होता है, उससे ताजगी आती है। लेकिन ज्यादा होकर तो वह नुकसान ही करता है। क्यों साहब ?

मैंने कहा—हाँ वह तो है।

कहने लगे—क्या आप कल हमारी तरफ आइएगा ? अवश्य आइए। आपकी बात वह बहुत मानती हैं।

मैं गया। कुछ देर साधारण बातचीत होने के बाद अनायास भाव से डॉक्टर ने कहा—अपना मन्दिर तो इन्हें दिखाओ।

सुनकर कल्याणी कुछ सकुचित दीख पड़ीं।

मैंने कहा—कैसा मन्दिर है ?

संकोचपूर्वक बोलीं—कुछ नहीं, कुछ नहीं।

मैंने कहा—भगवान् के राज्य में तो किसी का भी निषेध नहीं हुआ करता। भगवान् की सृष्टि में सबको जगह है। आपका मन्दिर

बोलीं—जब तक आपके निकट वह मेरा है आपका अपना भी नहीं है, तब तक आप उस मन्दिर में आने की कैसे सोच सकते हैं ? मन्दिर म्यूज़ियम नहीं होता।

यह कुछ इस तरह कहा गया कि सुनकर मैं चुप रह गया। जवाब नहीं सूझा।

डॉक्टर ने कहा—देखने में क्या है ! इन्हें भी नहीं दिखा सकोगी ?

"जब तक भगवान् के मन्दिर को यह अपने से पराया गिनेंगे अपना ही मानकर उस भाव से वहाँ नहीं जा सकेंगे तब तक मैं क्या कर सकती हूँ। मन्दिर तो मन का होता है न।

डॉक्टर बोले—तुम्हारे देवता और भगवान् मेरा तो किसी से परिचय नहीं है मुझे तो तुम रोज आरती में दिखती हो।

तुम मुझसे अलग नहीं हो। पर इस तक कहीं मेरा अधिकार पहुँचता है ?

मैंने हँसकर कहा—न सही। जब पास हुआ तभी मन्दिर के दर्शन कर था। अभी उत्कण्ठा भी थोड़ी।

उन्होंने पूछा—आप ईश्वर को नहीं मानते न ?

मैंने कहा—मैं नहीं जानता कि नहीं मानूँ तो किस प्रकार और मानूँ तो मैं ?

बोलीं—तो मन्दिर-मस्जिद गिरजा-शिवालय भजन प्रार्थना ढोंग है ?

मैंने कहा—किसी में भी श्रद्धा पाए बिना मैं उसकी पूजा करूँ वह ढोंग होगा।

वह सहसा बोलीं—मैं आपको ऐसा न जानती थी।

मैंने कहा—तो मुझे कहना चाहिए कि आप गलत जानती थीं मुझे अधार्मिक ही जानिए। शायद हम पुरुषों को धार्मिक पात्रता मिलती ही कम है।

वह कुछ नहीं बोलीं। पर डॉक्टर उत्साहित मालूम हुए। कहने लगे—इनकी दिनचर्या आप कुछ जानते हैं ? एक बार खाती हैं, चार बार स्नान करती हैं और कम-से-कम चार बार अपने मन्दिर को देती हैं।

कल्याणी ने जैसे इन बातों की ओर ध्यान नहीं दिया। वह एक नीचे को निगाह किये ही बैठी रहीं। बेशकीमती इपररिंग और नयी-नयी चाल के अनुरूप परिधान पहने इस नारी को उस भाँति सीधी दृष्टि किये सामने बैठा देखकर मुझे जाने कैसा मालूम हुआ! उसने निगाह उठायी नहीं थी जैसे बस मरना ही उसका काम है।

डॉक्टर बताने लगे—ये सबेरे चार बजे उठ जाती हैं। तभी ठण्डे
नी से नहाती हैं। मैं कहता हूँ कि इस तरह स्वास्थ्य को खतरा है
किन चूँकि इनके पत्थर के भगवान्जी कुछ नहीं कहते हैं इसलिए कुछ
हीं सुनती हैं। यहाँ अस्पताल में रोगियों से निबटने में ढाई-तीन तो रोज
ज ही जाते हैं। कभी और भी देर हो जाती है। लेकिन इनका हाल
कि यहाँ से जाकर नहाएँगी पूजा करेंगी तब अन्न मुँह में देंगी। चाहे
समें सवेरा शाम से क्यों न मिल जाए। मैं कहता हूँ कि यह धर्म है कि
ात्कार है!

कल्याणी यह सब सुनती हुई निगाह को मेज पर उसी तरह एकटक
धे अचल भाव से बैठी रहीं।

डॉक्टर कहते रहे—और मेहनत का यह हाल है कि ठीक सात बजे
अस्पताल में आ जाती हैं। आराम ज़रा नहीं लेतीं न किसी को लेने
ती हैं। कहती हैं कि सूरज आसमान में आराम लेता है? ईश्वर के
राज्य में किसी को आराम है? सो दिन में विश्राम का नाम नहीं। हफ्ते
में अगर दो नहीं तो एक उपवास तो होता ही है। आज एकादशी है
तो कल पंचमी है।

'बस हुआ! अब आप चुप रहिए।'

कल्याणी ने यह कुछ इतने जोर से कहा कि मैं हैरत में रह गया।
देखता हूँ कि बहकर क्रोध आई है और अपना उद्वेग उनसे नहीं
सँभल रहा है।

'आप जिस बात को नहीं जानते और इसलिए मानते भी नहीं हैं
उस पर फिर टीका क्यों करते हैं? चुप रहिए! आप चाहते हैं 'आप
क्या चाहते हैं?

उनके ओंठ काँपकर नीले पड़ गए।

'क्या चाहते हैं आप? यह कि मैं मर जाऊँ?

डॉक्टर गुमसुम स्तब्ध भाव से देखते और सुनते रह गए। मैं भी
इस सहसा उद्वेग को समझ नहीं सका। पिछली बातचीत में पत्नी के
प्रति डॉक्टर की चिन्ता और सहानुभूति ही प्रकट होती थी। इससे पत्नी

उन्होंने पूछा—क्यों जी उनकी कुछ काहे का हो सकता है ?

मैंने कहा—फिर वही बात ! कह तो दिया कि मैं अन्तर्यामी नहीं हूँ।

"तुम उनसे एक दिन पूछते क्यों नहीं हो ?

मैंने कहा —जाने कैसी बात तुम कहती हो ! अरे तो भाई, तुमने क्या नहीं पूछा ?

बोली—जरा तो उनके सामने इतना मुँह नहीं खुलता।

मैंने कहा —तो हुआ, बस !

बोली— सुना है, उनके डॉक्टर साहब उनका बहुत मान करते हैं अपने को उनके आगे कुछ नहीं गिनते।

"सो तो है ही।"

"सुना है सब धन दौलत में उन्हीं का है डॉक्टर का कुछ भी नहीं है सब उन्हें विवाह में मिला है।"

"किससे सुना ?"

"यहीं औरतों से सुना और किससे ! क्या गलत है।'

मैंने कहा—होगा। हमें क्या ?

पत्नी चुप हो गई। जैसे विचार में हों। अनन्तर धीमे स्वर बोली—एक बात है। उनका चरित्र अच्छा नहीं सुनती हूँ।

मैंने चौंककर कहा—क्या ? चरित्र ?

बोली—बहुत ऐसी-वैसी बात सुनने में आती है।

मैंने सब ओर से कहा—जिनके काम कच्चे हैं, उन्हें उनमें दई सम सनी चाहिए। ध्यान रखने को सबके पास अपने चरित्र कम नहीं है यह क्या आदत है लोगों की ? दूसरे में खोट टटोलते हैं अपनी चिन्ता नहीं करते। दूसरे का तिल ताड़ अपनी आँख का पहाड़ कुछ नहीं। सुना तुम्हें भी यह करना चाहिए। मुझे भी यह करना चाहिए। हरक को म करना चाहिए। काम मूँद लने चाहिएँ। चरित्र चरित्र ! क्या होता चरित्र ? सुनती हो ? सबसे किसी के चरित्र की बात न करना।

कुछ ऐसे आवेश में मैंने यह सब कहा कि पत्नी को बिगड़ने का मौ

ध्यान न रहा।

मैंने कहा—सुनो कल तुम खुद उनके यहाँ जाना। डरना नहीं। और जो पूछना हो पूछना। मन में शक रखने से अच्छा है कि कोई अशिष्ट समझ जाए, पर शक निकालकर साफ कर दे। जाओगी?

"मैं जाऊँगी?"

मैंने कहा—वह मेम साहब हैं, इसीका खयाल है? नहीं-नहीं सो कुछ नहीं।

आशय यह कि मैं चाहता था और अगले दिन पत्नी उनके यहाँ गई।

११

वह लौटीं तो बहुत बातों से भरी थीं। आकर बोलीं—तुमने क्यों नहीं बताया कि वह ऐसी हैं? कौन कहता है वह मेम साहब है?

पत्नी उनके प्रति मन को सराहना और सहानुभूति से भिगोकर लाई मालूम होती थीं। कहने लगीं—वह ऐसी मिलीं जैसे कब की बिछुड़ी कोई हेलिन मिली हो। तनिक भी परायापन नहीं मालूम होने दिया। कहने लगीं कि धन्य भाग्य नहीं तो कौन हमारे यहाँ पाँव रखने भी आता है। किस्तान जो समझे जाते हैं।

पत्नी ने जो कहा मैं सब सुनता रहा। सबमें उसका यही भाव था कि उनमें गुमान ज़रा नहीं है और वह बड़ी भली हैं। और कि पति उन्हें बहुत प्रेम करते हैं, बहुत आदर करते हैं। पर कहती थीं कि मैं ही उनके लायक नहीं हूँ।

मैंने पूछा—उस लायक नहीं होने का मतलब भी तुमने पूछा?

उन्होंने कहा—वह हँसकर कहने लगीं कि शास्त्रों में जैसी सती

शीलवन्ती भार्या मिली है मैं वैसी कहाँ हूँ ! अंग्रेजी पढ़ी हूँ मोटर चला सकती हूँ। क्या ऐसी नारी शीलवन्ती हो सकती है ?

मैंने पत्नी से कहा—तो उनकी बात ठीक है। क्यों ?

पत्नी बोली—मुझे तो विश्वास हो नहीं सकता। कोई पुरुषार्थी भला अपने को वैसा बताता है ?

मैंने कहा—तो ?

बोली—आगे मैंने पूछा तो उन्होंने हँसकर इधर-उधर की बातों में टाल दिया। कहा कि 'मेरे मन के भीतर का अँधेरा बाहर आयेगा तो वह तुमको अच्छा नहीं लगेगा। उसे कुरेदने में क्या है ! उसे मुँदा ही रहने दो।' यह कुछ इस तरह कहा गया कि मुझसे फिर आग्रह करते नहीं बना। मैं समझती हूँ कि कुछ बात है जरूर।

मैंने कहा—छोड़ो-छोड़ो होगा कुछ ! अपने को क्या ?

इस विषय में पत्नी के वर्णन में मुझे दो सूचनाएँ दिलचस्पी की लगीं। एक तो उनका मन्दिर, दूसरे अँग्रेजियत के बारे में उनकी कड़ी आलोचना।

मन्दिर के बारे में बताया गया कि एक बड़ा-सा कमरा है। उसका नाम जगन्नाथ-धाम रखा है। घर की सब कीमती चीजें वहाँ हैं। चैक बुक और पेपर का बक्स वहीं रखा जाता है। उस कमरे का ताला नहीं लगाया जाता। पश्चिम की दीवार के सहारे पत्थर की वेदी पर सब धर्म सम्प्रदायों की छोटी-छोटी मूर्तियाँ रखी हैं। जिनकी मूर्ति नहीं उनके चित्र। ईसा और बुद्ध की खड़ी प्रतिमाओं के बीच मक्के शरीफ की तस्वीर है। घी का एक दीपक चौबीसों घण्टे वेदी के बराबर जगा रहता है। सामने एक थाली है जिसमें कुछ मिट्टी, दूब, फूल, वनस्पति के अंग, अन्न के दाने, एक सोने की मोहर और आदमी के सिर का एक सूक्ष्म अस्थि-खण्ड रखा रहता है। एक तरफ सब धर्मों की किताबें चुनी हैं। ऊपर दीवार पर एक बहुत बड़ा मानव-कंकाल का चित्र है। कमरे में जगह जगह हर अवस्था की उनकी अपनी तस्वीरें लगी हैं—बचपन की, कैशोर्य की, युवावस्था की और हाल की। सबसे ऊपर उनकी माता की

ूत मवस्था का चित्र है, जब वह धर्ती पर से धायी जाने को है। और ईक के नीचे एक घस्थि-शेष नर-कंकाल का चित्र टँगा है। कमरे के र्श पर कीमती ईरानी कालीन बिछे हैं। मूर्तियों के समक्ष दो संगमर मर की चौकियाँ हैं। एक पर कुशासन बिछा है। दूसरी जो जरा ऊँची है बराबर में धनबिछी रहती है। नीची पर भारती के समय खुद बैठती है ऊँची पति के लिए है।

सायं प्रातः जगन्नाथजी की भारती होती है। भारती वह खुद करती है जिसमें भपनी बनाई कविता पढ़ती हैं। घर के नौकर चाकर, बाल-बच्चे और पति सब शामिल होते हैं। जिस दिन पति बेकाम अनुपस्थित होते हैं उस दिन खाना छोड़कर पत्नी प्रायश्चित्त करती हैं। मंदिर के कमरे में भेद भाव नहीं रखा जाता। मेहतरानी को कई बार आग्रह शाम की भारती में शामिल किया गया और उसे थाली में से प्रसाद मिला है। नीचे रहने वाली एक मुसलमान साईस की पत्नी तो अक्सर शाम को भारती में साथ होती है। अमीर-गरीब का भेद तो है ही नहीं।

मैंने श्रीमती से पूछा—यह सब तुम्हें कैसा लगा?

बोलीं—क्या बताऊँ, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आया।

मैंने कहा—अनूप है है कि नहीं?

बोली—मुझे तो ये अच्छे लक्षण नहीं मालूम होते।

"क्या मालूम होता है?"

पत्नी ने दुःख भाव से कहा—क्या जानूँ क्या होता है! लेकिन कहती हूँ कि ये लक्षण भले नहीं हैं।

मैंने हँसकर कहा—तुमने वहीं उनको समझाया नहीं?

बोलीं—उस वक्त तो मुझे कुछ गलत नहीं लग रहा था बल्कि मुझे ही उनकी श्रद्धा छूती थी। उन्हें अपने जगन्नाथजी की बड़ी लगन है। अपने मकान के कमरों के नाम भी सब उन्होंने उसी ढंग के रख लिए हैं। बताया कि यह जगन्नाथजी का बैठकखाना है वह अन्नपूर्णाजी का भंडार है इत्यादि। मैंने उनसे पूछा था कि फिर तुम्हारा क्या है,

रखता है ?

मैंने कहा—मेरे बदले आप उससे नाराज न हूजिए।

सव्यंग्य वह बोली—नाराज होकर मैं किसीका कुछ बिगाड़ सकी हूँ अभी तक ऐसा तो मुझे पता नहीं चला। फिर नाराज होकर क्या करूँगी ?

मैंने कहा—मैं डॉक्टर साहब की बात पूछ रहा था।

बोलीं—डॉक्टर साहब मुझसे नाराज हैं।

मैंने कहा—नाराज तो वे हो सकते हैं पर नाराज होकर भी आपकी चिन्ता छोड़ नहीं सकेंगे।

वह कुरसी पर पीछे को सिर डालकर बैठ गईं। बोलीं—अच्छा एक बात बताइए। ठीक-ठीक बताइएगा ?

कहकर कुछ प्रश्न करने की जगह वह समाज के प्रति व्यक्ति की जिम्मेदारी की चर्चा चलाने लगीं। सामाजिक नियमों का उल्लंघन उदासीन होकर नहीं देखा जा सकता। मर्यादाओं की रक्षा आवश्यक है नहीं तो समाज बिखर जाएगा। मनुष्य और पशु में तब भेद नहीं रहेगा। आदमी समाज में मर्यादा का निर्वाह हम जब तक करते हैं तभी तक मनुष्य और पशु में भेद है। पशुओं में एक से दूसरे में विशेषता नहीं होती सब समान हैं सबके अधिकार समान हैं। हर दूसरे को मार खाने को स्वतंत्र है। पर मनुष्य ने सभ्यता बनाई है जिसके कारण आदमी और आदमी में विशिष्टता है। सबके परस्पर भिन्न हैं और कर्तव्य तथा अधिकार भी भिन्न हैं। सबका धर्म अपनी मर्यादा की रक्षा है। मर्यादाहीन धर्म पशुता है। सुनते हैं आप ? समाज-विधान की मर्यादाओं का खण्डन अनिष्ट है। पशुओं का इकट्ठा योग होता है रेवड़ या झुण्ड होता है। लेकिन मनुष्य ने एकत्रित होकर अपना समाज बनाया। नियम हैं इसीसे समाज समाज है। क्या नियम की अवज्ञा की जा सकती है ?

इसी भाँति समाज की स्थिरता में व्यक्ति के विसर्जन की आवश्यकता पर कहते-कहते अन्त में उन्होंने पूछा—अब बताइए, जो उस समाज-नियम को भंग करता है उसका क्या होना चाहिए ?

मैंने कहा—क्या मैं जज हूँ ? मैं तो वकील हूँ जिसका काम भरसक अभियुक्त के प्रति जज की सहानुभूति जगाना और प्राप्त करना है।

बोलीं—नहीं-नहीं आप बताइए। दुश्चरित्र का क्या होना चाहिए ?

मैंने कहा—होना तो सबको मुक्त चाहिए। उससे इधर-उधर, जो समाज के लिए असह्य हो जाता है उसकी कुछ तो व्यवस्था समाज करता ही है। उसी व्यवस्था में जेलखाने बने हैं और दण्ड-विधान भी है।

बोलीं—नहीं मैं पूछती हूँ कि दुराचारिणी स्त्री को क्यों नहीं मर जाना चाहिए ?

मैंने कहा—राम दुहाई, जीने से आगे मरने आदि के मामले में हमारी वकालत चल नहीं सकती।

बोलीं—हँसी न कीजिए। मैं सच कहती हूँ। क्या दुश्चरित्र स्त्री को मर जाना चाहिए ? वह जीती नहीं रह सकती ?

मैंने कहा—क्या ऐसी बातें सुनने के लिए ही मुझे बुला भेजा गया था ? तब तो मैं क्षमा माँगूँ।

उन्होंने कहा—नहीं आप जाइए नहीं बैठिए। मुझसे डरिएगा ? पर मैं ऐसी नहीं हूँ। सुनिए एक बात है। उसी के लिए मैंने आपको बुलाया था। पर वह पीछे लेख मेरे थे आपने देखे ?

"हाँ देखे तो "

"उनमें मैंने गलत तो नहीं कहा ? आपका मत क्या है ?"

"मेरा मत ? पर आप अपने से रुष्ट क्यों हैं ?"

मानो चौंककर वह बोली—इसमें आपका क्या मतलब है ? मैं वही नहीं मानती जो लिखती हूँ क्या यह आपका ख्याल है ?

"यह तो नहीं "

उन्होंने बीच में ही टोककर जानना चाहा—तो फिर ?

मैंने कहा—अत्याचार कभी अच्छा नहीं लगा। अपने ऊपर किया जाए तब क्या वह अच्छा हो जाता होगा ? यह अत्याचार नहीं तो क्या है कि आप अपने को दुश्चरित्र कहती हैं ? दुनिया में सत्-चरित्र कौन है ? अगर कोई है तो वह कृपा कीजिए है। जाहिर कि वह गलत हो।

हूँ मुझे लगा है कि वह जीवन को किसी तरह मृत्यु से कम विषम न
रहने देना चाहती है।

इसीलिए मैं उनका चित्र देते डरता हूँ। मुझे इस बात की भी खु
है कि कहानी में रंग भरना मुझे नहीं आता। कोरी घटी बातें ही म
मैं दे सकता हूँ।

सो बात-बात में वह बोली—उनका खत आया है

मैं प्रसन्न होने को तैयार हुआ।

'' 'लिखा है कि कोठी में कोई कमी न रहे। पैसे की तरफ
देखा जाए और बीस दिन के अन्दर सब तैयार हो जाए।'

मैं सुनकर विस्मय से उनकी तरफ देखता रहा।

किंचित् हँसकर बोली—क्या आपको मालूम नहीं? वह मार्च ज
रहा है। अप्रैल का प्रवेश है प्रीमियर यहाँ आने वाले हैं।

प्रदेश के प्रीमियर इस दिल्ली में आने वाले होंगे कि उस ख़बर
अख़बार वाले सुभीते के साथ हम सब तक अनायास पहुँचा ही दे
कोई भला नागरिक उस ख़बर से अछूता नहीं। पर इस कल्याणी
नई कोठी और उन प्रीमियर के नई दिल्ली में आने में क्या संगति है
मैंने जानना चाहा।

कल्याणी कुछ लजाईं, कुछ मुस्कराईं, पर उन्होंने कहा—

बात यह है कि जो अब प्रीमियर हैं वह कभी प्रीमियर नहीं थे
तब विलायत में बैरिस्टर बन रहे थे। कल्याणी का वहीं का परिच
है। परिचय में गाढ़ता भी है। लेकिन यह तो निजी बात है छोड़िए
प्रस्तुत बात यह है कि डॉक्टर ने लिखा है कि कोठी में रखो प्रीमियर
यानि यहीं ठहराना होगा। उनके लिए सार्वजनिक सत्कार और सम्मा
का प्रबन्ध भी करना होगा" "इसीलिए सब-कुछ है।

मैंने कहा—अच्छा तो है।

पर वह बोली—मैं प्रीमियर को ज़रा नहीं जानती। मैं मित्र
जानती हूँ। लेकिन डॉक्टर की निगाह में उनका प्रीमियरपन ही है
जिससे उन्हें दिलचस्पी हो। लेकिन प्रीमियरपन अभ्यर्थनीय है। यह क

मेरे स्नेह-सम्बन्ध को क्या यह धुए पर लगाना नहीं है ? मेरा तो
के मारे मरने को जी चाहता है ।
उनका आन्तरिक क्लेश उनकी मुद्रा से मुझ पर प्रत्यक्ष हुए बिना न
। मैंने सान्त्वना दी । कहा—क्यां ऐसा अनुचित तो मुझे इसमें कुछ
ई नहीं देता ।
बिलबिलाहट में बोलीं—आप नहीं जानते आप नहीं जानते । वह
पर से मतलब साधना चाहते हैं । कांग्रेस मन्त्रिमण्डल क्या अवसर
। के लिये हैं ? इसमें ही मेरे स्नेह-परिचय का लाभ उठाया जाएगा ?
ऐसे हिन्दुस्तान स्वतन्त्र होगा ? क्या इसी का नाम व्यापार है ?
ई है ? सुधार है ?
मैंने सरलता से कहा—तो छोड़िए, मत शामिल होइए ।
सुनकर मानो आश्चर्य से मेरी ओर देख उठीं । देखते-देखते उन
में मोम सा गई । बोलीं—क्या करूँ ? न क्या करूँ ?
मैंने कहा—क्यों ? इसमें कठिनाई क्या है ?
सुनकर वह कुछ देर फटी आँखों से मुझे देखती रह गई । उन आँखों
ली झलक रहा था पर वह ढरका नहीं मानो वह बाढ़ हो गई ।
देर बाद वह बोलीं—आप पूछेंगे ही ? अच्छी बात है । मैं कहूँगी ।
। है कि मेरी अपनी कमजोरी कठिनाई है ।
कुछ देर रुकी रहकर फिर बोलीं—अपने प्रवासी मित्र का साथ
सम्मान में देखना चाहती हूँ उसमें योग देना चाहती हूँ । आपसे
ली नहीं—मुझसे उन बन्धु को निराशा ही मिली । ऐसा पात्र
कौन होगा ! क्या आप जानते हैं कि वह अविवाहित हैं ? जिन्दगी
शायद अविवाहित रह जाएँ लेकिन मैं नहीं नहीं । मैंने अपने को
रखा । अब उनके इस समय में आने पर क्या यह मुझसे हो भी
। कि मैं कुछ न करूँ ? इससे मैं कोठी ले रही हूँ । इसमें रवीन्द्रनाथ
गोरस उजड़ा जा रहा है । इसमें मैं ही शायद लुटी जा रही हूँ । पर
करूँ ? स्त्री अबला है ।
मैं इस सबके लिए तैयार न था । मेरा जी भीतर से उठ गया । मैं